॥ श्रीः ॥

विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला

५०

भासनाटकचक्रे

कर्णभारम्

'प्रकाश' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः

पं० श्रीरामजीमिश्रः एम० ए०

(रिसर्चस्कालर, काशी हिन्दूविश्वविद्यालय)
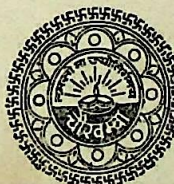
चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी--१

१९७६

प्राक्कथन

महारथी कर्ण के त्यागपूर्ण दिव्य चरित्र का गान कर अनेक कवियों ने अपनी वाणी को सफल बनाया है। महाकवि भास ने अपनी अद्भुत प्रतिभा से उनके जीवन की एक कारुणिक झाँकी प्रस्तुत नाटक में उपस्थित की है। 'एको रसः करुण एव' की सार्थकता यद्यपि उत्तर-रामचरितम् में पूर्ण रूप से प्राप्त होती है तथापि करुण रस का जैसा मार्मिक संस्पर्श इस कर्णभार के छोटे से कलेवर में प्राप्त होता है वैसा अन्यत्र नहीं। कवि की प्रतिभा एवं सहृदयता के निदर्शक अनेक स्थल इस उत्सृष्टिकाङ्क में प्राप्त होते हैं। यहाँ मैं एक उदाहरण देने का लोभ संवरण नहीं कर सकता—

> अत्युग्रदीप्तिविशदः समरेऽग्रगण्यः
> शौर्ये च सम्प्रति सशोकमुपैति धीमान्।
> प्राप्ते निदाघसमये घनराशिरुद्धः
> सूर्यः स्वभावरुचिमानिव भाति कर्णः॥

भास की इस अमूल्य कृति को संस्कृत साहित्य के नवीन अध्येताओं के योग्य बनाने के लिए ही इसमें समासविरहित सरल संस्कृत और हिन्दी का प्रयोग किया गया है।

कर्णभार को प्रस्तुत रूप देने में वेद-व्याकरणाचार्य पूज्य पण्डित मंगलदत्त जी त्रिपाठी एवं अन्य महानुभावों से मुझे जो सहायता मिली है उसके लिए मैं विनम्रतापूर्वक अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। चौखम्बा विद्याभवन के अध्यक्ष महोदय ने यह कार्य मुझे सौंपा इसके लिए उन्हें धन्यवाद है।

यदि विद्यार्थियों को प्रस्तुत पुस्तक से कुछ भी लाभ हुआ तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा।

श्रावणी पूर्णिमा
२०१७ वि०

रामजी मिश्र

महाकवि भास

संस्कृत वाङ्मय का भण्डार भास ने लालित्यपूर्ण सफल नाटकों से सम्पन्न किया है। मानवीय भावनाओं का जैसा सफल चित्रण हमें भास के नाटकों में मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। महाकवि अश्वघोष और कालिदास से भास किसी भी क्षेत्र में न्यून नहीं दृष्टिगोचर होते। श्री सुशीलकुमार डे ने तो कहा है कि अश्वघोष के नाटकों को पढ़ने के बाद जब हम कालिदास के नाटकों को पढ़ते हैं तो उसमें काफी ऊँची भावभूमि पर आना पड़ता है, रचना-विधान की भी दृष्टि से पर्याप्त सौष्ठव मिलता है। सहसा इतनी अधिक प्रगति पाकर हमें आश्चर्य होता है, पर जब हम भास की कृतियों का आस्वादन कर लेते हैं तो विकासक्रम हमें बिलकुल स्वाभाविक प्रतीत होता है। अतः मैंने महाकवि भास को अश्वघोष और कालिदास के बीच की कड़ी माना है।

भास को साहित्य-जगत् में पुनः प्रतिष्ठित करने का श्रेय महामहोपाध्याय पं० गणपति शास्त्री को है। इन्होंने सन् १९१२ ई० में अनन्तशयन ग्रन्थ-माला (त्रिवेन्द्रम्) से भास के स्वप्नवासवदत्तम् आदि १३ नाटकों का बड़ा ही प्रामाणिक-प्रकाशन कराया। साहित्य-समीक्षकों और सहृदयों के मन में 'प्रियविषये जिज्ञासा' खूब बढ़ी और भास के विषय में सर्वांगीण गवेषणाओं का श्रीगणेश हुआ। ये सब नाटक अपनी रचना-पद्धति, भाषाशैली एवं रसवत्ता की दृष्टि से बेजोड़ हैं, इसे मानने में किसी को भी आपत्ति नहीं, पर सब नाटक एक ही कवि की कृति हैं या नहीं इस पर विद्वानों में बड़ा मतभेद है। इतने बड़े कवि के जन्मकाल की समस्या तो अनेक ऊहापोह के बाद भी अभी सुलझी नहीं।

प्राचीन महाकवियों की भाँति भास ने भी अपनी रचनाओं में अपनी चर्चा नहीं की है। जिस प्रकार कविकुलगुरु कालिदास के विषय में अनेक पाश्चात्य और पूर्वीय विद्वानों के परस्पर विरुद्ध मत हैं उसी प्रकार भास के विषय में भी पाये जाते हैं। उन सभी मत-मतान्तरों का मन्थन कर श्री पुशलकर जी ने निम्नलिखित तालिका बनाई है—[1]

---

१. देखिए—पुशलकर—Bhasa : A Study पृष्ठ ६१ की टिप्पणी।

भिडे, दीक्षितार, गणपति शास्त्री, हरप्रसाद शास्त्री, खुपेरकर, किरत और टटके	छठी से ४ थी शताब्दी ई. पू.
जागीरदार, कुलकर्णी, शेम्बवनेकर, चौधुरी, ध्रुव एवं जायसवाल	३री शताब्दी ई० पू०
कोनो, लिण्डेन्यू, सरूप, सौली, एवं वेलर	२री शताब्दी ई०
वनर्जी शास्त्री, भण्डारकर, जेकोबी, जौली एवं कीथ	३री शताब्दी ई०
लेस्नी और विंटरनित्ज	४थी शताब्दी ई०
शंकर	५वीं या छठी शताब्दी ई०
वार्नेट, देवधर, हीरानन्द शास्त्री, निरुरकर पिशरोटी और सरस्वती	७वीं शताब्दी ई०
काने और कुन्हनराजा	९वीं शताब्दी ई०
रामाअवतार शर्मा	१०वीं शताब्दी ई०
रेड्डी शास्त्री	११वीं शताब्दी ई०

उपर्युक्त मतों को तीन भागों में बाँट कर उनकी प्रामाणिकता पर विचार करने में सुविधा होगी। इन्हें यों रखा जा सकता है—

प्रथम मत (चतुर्थ-पंचम शताब्दी ई० पू०)—महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री, दीक्षितार आदि के अनुसार महाकवि भास पाणिनि और कौटिल्य से भी अधिक प्राचीन ठहरते हैं। कौटिल्य ने युद्ध क्षेत्र में शूरों के उत्साह-वर्द्धन के लिए जिन श्लोकों का उद्धरण दिया है उनमें से एक श्लोक भासकृत 'प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण' में उपलब्ध है।[1] भास के 'प्रतिमानाटक' में भी महा-पण्डित रावण ने स्वयं अपने को बृहस्पति-अर्थशास्त्र का ज्ञाता कहा है।[2] इससे भी यह सिद्ध होता है कि भास के समय में कौटिल्य के प्रसिद्ध अर्थशास्त्र का प्रणयन नहीं हुआ था।

---

१. नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य मा भून्नरकं च गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्॥
(अर्थशास्त्र, १०।३ पृ० ३६७–३६८) तथा प्रतिज्ञा ४।२

२. 'भोः काश्यपगोत्रोऽस्मि। साङ्गोपाङ्गं वेदमधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रं, माहेश्वरं योगशास्त्रं, बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं, मेधातिथेर्न्यायशास्त्रं, प्राचेतसं श्राद्धकल्पं च॥' प्रतिमा, अङ्क ५

पाणिनीय व्याकरण के नियमों की व्यवस्था भास के ग्रन्थों में नहीं पाई जाती। इससे यह सिद्ध होता है कि भास पाणिनि से पूर्ववर्ती अवश्य थे।

विन्सेन्ट ए० स्मिथ के मतानुसार ई० पू० २२० से १९७ तक शूद्रक का शासन था जिसके 'मृच्छकटिक' पर 'दरिद्र चारुदत्त' का स्पष्ट प्रभाव माना जाता है।[1] अत: 'अपने दरिद्र चारुदत्त' की रचना भास ने संभवतः ई० पू० पाँचवीं या चौथी शताब्दी में की होगी।

भास के ऐतिहासिक नाटकों में जिन तीन राजाओं की कथा का आश्रय लिया गया है उनमें १ कौशाम्बी के राजा उदयन, २ उज्जैन के राजा प्रद्योत और ३. मगध के राजा दर्शक के नाम उल्लेख्य हैं और इनका शासन-काल छठी शताब्दी ई० पू० के बाद नहीं माना जा सकता।[2] इसके भी पूर्व रामायण और महाभारत की रचना हुई होगी ?

महाकवि ने जिस नागवन, वेणुवन, राजगृह और पाटलिपुत्र का उल्लेख किया है इन सबने बुद्ध के समय में ही प्रसिद्धि प्राप्त की होगी! अतः कवि का समय बुद्ध के बाद ही माना जा सकता है। इससे डा० गणपति शास्त्री की यह मान्यता खण्डित होती है कि भास बुद्ध-पूर्व स्थित थे। इनके नाटकों में जिस समाज का चित्रण है वह अनेक प्रमाणों से भास को एक निश्चित समय में स्थित सिद्ध करता है। श्री ए० डी० पुशलकर ने सामाजिक स्थिति के विस्तृत विवेचन के द्वारा भास का समय ई. पू. पाँचवीं या चौथी शताब्दी निश्चित किया है,[3] जिसमें मुझे भी पर्याप्त तथ्य मिलता है।

द्वितीय मत (ईसा की द्वितीय-तृतीय शताब्दी)—डा० कीथ के अनुसार भास की अन्तिम तिथि-सीमा ३५० ई० हो सकती है क्योंकि कालिदास ने इसके पश्चात् ४थी शताब्दी में इनके यश का वर्णन किया है अर्थात् ये तब तक प्रथित-यश हो चुके थे।[4] अश्वघोष ने इनकी कहीं चर्चा नहीं की है और न इनका कोई

१. देखिए—पुशलकर-Bhasa : A Study, अध्याय ६।

२. देखिए विन्सेन्ट स्मिथ कृत 'Early History of India' पृ. ३८, ३९, ५१

३. देखिए ए० डी० पुशलकर कृत 'Bhasa : A Study' पृ. ६७-६८।

४. "It is ditffcult to arrive at any precipe determination of Bhasa's date. That Kalidas knew his as firmly established is clear, and, if we may fairly safely date Kalidas about A .D. 400, this

प्रभाव ही उन पर दृष्टिगत होता है पर इनके 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में 'बुद्ध-चरित' के एक श्लोक की स्पष्ट छाया मिलती है[१]। इसलिए यह सिद्ध होता है कि भास अधिक से अधिक द्वितीय शताब्दी (अश्वघोष) के बाद और कम से कम पाँचवीं शताब्दी (कालिदास) से पूर्व अवश्य रहे होंगे ? अब भास कालिदास के अधिक निकट हैं या अश्वघोष के, यह एक प्रश्न है, जिसके उत्तर में डा० कीथ ने इन्हें कालिदास के अधिक निकट माना है।[२]

भास महाभारत या कृष्ण से सम्बद्ध कथावस्तुओं के निर्वाह में जैसे तल्लीन और सफल हुए हैं वैसे अन्यत्र नहीं, संभवतः क्षत्रप राजाओं के आश्रित होने से ही उन्होंने यह प्रभाव ग्रहण किया हो जो कि परम कृष्ण-भक्त थे। इन क्षत्रपों का राज्य-काल स्टेन कोनो के मतानुसार दूसरी शताब्दी ईस्वी ठहरती है और भास इसी समय वर्तमान माने जाते हैं।

तृतीय मत (सातवीं शताब्दी)—भास के नाटकों का समय सातवीं शताब्दी ईस्वी मानने वालों में डा० बार्नेट प्रमुख हैं। बार्नेट ने 'नाटक-चक्र' के कर्त्ता महाकवि भास नहीं हैं अपितु कोई केरलीय कवि है जो ईसा की सातवीं शताब्दी में वर्तमान था ऐसा सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। इसके अतिरिक्त भास के भरतवाक्यों में जिस राजसिंह का उल्लेख है उसे वे केरल का कोई राजा मानते हैं पर स्टेन कोनो ने इसे क्षत्रप रुद्रसिंह प्रथम, ध्रुव ने शुंग पुष्यमित्र तथा दूसरों ने अन्य किसी राजा का विशेषण माना है। पुशलकर ने इसे विन्ध्य और हिमवत् तक फैले हुए उत्तरी भारत पर एकच्छत्र राज्य करने वाले प्रथम सम्राट् चन्द्रगुप्त को मानकर अपने मत की पुष्टि की है।[३]

सिद्धान्त मत—अन्ततोगत्वा भास के नाटकों का अन्तःपरीक्षण एवं बहिःपरीक्षण करके यह सिद्ध किया जा सकता है कि कवि मौर्यकाल के पूर्व

---

gives us a period of not later than A D. 350 for Bhasa."

(The Sanskrit drama, Page 93. 1954.)

१. दे० बुद्धचरित सर्ग १३ श्लोक ६०

२. देखिए. The Sanskrit drama'–A. B. Keith p. 95.

३. देखिए पुशलकर—Bhasa : A Study' पृ० ६६।

वर्तमान था क्योंकि इन्होंने भी कहीं अपनी रचनाओं में अपना नामोल्लेख नहीं किया है। भरतवाक्यों को दृष्टि में रखते हुए भास की स्थिति उग्रसेन महापद्मनन्द (चन्द्रगुप्त मौर्य के उत्तराधिकारी) के समय में मानी जा सकती है।

जैसे कालिदास, शूद्रक और कौटिल्य का समय असंदिग्ध है वैसे ही भास को अश्वघोष के पहले रखा जाय या पश्चात् यह भी एक समस्या है। भास को सब प्रकार से मौर्यकाल के पूर्व सिद्ध किया जाता है तथा कौटिल्य (४थी शताब्दी ई० पू०) के पश्चात् इन्हें किसी प्रकार नहीं लाया जा सकता।[१]

कर्तृत्व—महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री द्वारा सम्पादित 'नाटक-चक्र' के सम्पूर्ण नाटकों के कर्त्ता महाकवि भास ही हैं या कुछ अन्य कवि की भी कृतियाँ इसमें जोड़ी गई हैं[२] यह अब तक निश्चित नहीं हो सका है। अधिकांश विद्वान् अब डा० गणपति शास्त्री से सहमत हो गये हैं, जैसे डा० कीथ, डा० थामस, डा० सरूप, प्रो० परांजपे और प्रो० देवधर आदि। प्रो० जागीरदार ने स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् एवं पंचरात्र को भास की कृति मानकर शेष नाटकों को दो भागों में विभक्त करके भिन्न-भिन्न काल की रचनाएँ मानी हैं। डा० विंटरनित्ज और डा० सुक्थनकर ने 'स्वप्नवासवदत्तम्' और 'प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्' को भास की कृति मानी है, शेष के बारे में कोई निश्चित मत नहीं व्यक्त किया है।

धर्म—प्रो० विंटरनित्ज ने इनके नाटकों को ब्राह्मण-धर्म का पोषक माना है, क्योंकि भास के नाटकों में ब्राह्मणों के प्रति बड़ी श्रद्धा दिखाई गई है[३] इन्हीं प्रमाणों के आधार पर डा० व्यास ने अपना मत व्यक्त करते हुए बतलाया है कि भास के समय तक ब्राह्मण-धर्म का पुनरुत्थान हो चुका था।[४]

इन नाटकों के कर्त्ता के प्रमाणस्वरूप हमें इनके अन्तःसाक्ष्य और बहिःसाक्ष्य पर विचार करना आवश्यक है।

---

१. देखिए पुशलकर—'Bhasa : A Study' पृ० ७६-८१।

२. इस विषय में बार्नेट का मत पृष्ठ ४ के 'तृतीय मत' में देखिये।

३. 'द्विजोत्तमाः पूज्यतमाः पृथिव्याम्' मध्य० १।६, 'ब्राह्मणवचनमिति न मयातिक्रान्तपूर्वम्' कर्णभारम् १।२३, बालचरित २।११ आदि।

४. डा० भोलाशंकर व्यास : संस्कृत कवि दर्शन' पृ० २२०।

अन्तः साक्ष्य (रचना-विधान में साम्य)—

१. नांदीपाठ के स्थल पर मंगलपाठ का विधान तथा सूत्रधार के द्वारा नाटकों का प्रारम्भ (नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः')।

२. 'प्रस्तावना के स्थान पर 'स्थापना' का सर्वत्र प्रयोग।

३. प्ररोचना का अभाव।

४. तेरह नाटकों में से पाँच नाटकों के प्रथम श्लोकों से मुद्रालंकार (देवता की स्तुति के साथ साथ पात्रों का भी नामोल्लेख तथा कथानक की ओर भी हल्का संकेत) पाया जाता है।

५. भरतवाक्य में 'राजसिंह का नामोल्लेख।[1] (केवल चारुदत्त और दूतघटोत्कच में भरतवाक्य का विधान नहीं है।)

६. सब नाटकों की भूमिका अल्प तथा प्रारम्भिक वाक्य एक से हैं।[2] (केवल 'प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्', 'चारुदत्त', 'अविमारक' और 'प्रतिमा में कुछ भेद है।)

७. कंचुकी और प्रतिहारी (बादरायण और विजया) का नाम अनेक नाटकों में दुहराया गया है।

८. अनेक नाटकों में (नाटकीय व्यंग्य) 'पताकास्थान' का प्रयोग।

९. कई वाक्यों का समान रूप से अनेक नाटकों में प्रयोग।

१०. नाटकों की संस्कृत का विशुद्ध-पाणिनीय-व्याकरण सम्मत न होना।

११. भरत-प्रतिपादित नाट्यशास्त्रीय विधि-निषेधों का उल्लंघन इनके प्रायः सभी नाटकों में पाया जाता है, जैसे (क) दशरथ की मृत्यु 'प्रतिमा' और बालि की 'अभिषेक' में तथा दुर्योधन की मृत्यु 'ऊरुभंग' में प्रदर्शित है। (ख) चाणूर, मुष्टिक और कंस का वध। (ग) कृष्ण और अरिष्ट के घोर युद्ध का दृश्य 'बालचरित' में। (घ) क्रीडा और शयन का विधान 'स्वप्नवासवदत्तम्' में। (ङ) दूर से जोर से पुकारने का वर्णन 'पंचरात्र' और मध्यमव्यायोग' में।

१२. कथानकों का साम्य।

---

१. 'इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः॥'

२. 'एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि। अये किन्तु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते। अङ्ग पश्यामि।'

१३. युद्ध की सूचना इन्होंने भटों, ब्राह्मणों आदि से अधिकांश नाटकों में दिलाई है।

१४. किसी उच्च पदाधिकारी जैसे राजा, राजकुमार या मन्त्री के आगमन की सूचना 'उस्सरह उस्सरह। अय्या ! उस्सरह' आदि के द्वारा दी गई है। स्वप्नवासदत्तम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, प्रतिमा आदि में इसके पर्याप्त उदाहरण हैं।

१५. किसी विशिष्ट घटना की सूचना के लिए 'निवेद्यतां निवेद्यतां महाराजाय' इत्यादि का विधान पंचरात्र, कर्णभारम्, दूतघटोत्कच आदि में किया गया है।

१६. एक की मुख मुद्रा को ही देखकर उसके आन्तरिक भावों का परिज्ञान इनके एकाधिक नाटकों—जैसे प्रतिमा, अविमारक, अभिषेक आदि—में कराया गया है।

भावों में साम्य—भावों की एकता तो प्रत्येक नाटक में पाई जाती है। कुछ विशेष भावसाम्य का नीचे उल्लेख किया जाता ह—

१. कवि ने वीर के स्वाभाविक शस्त्र उसके हाथों को ही सिद्ध किया है जिसके उदाहरण बालचरित, मध्यमव्यायोग, पञ्चरात्र, अविमारक आदि में पाए जाते हैं।

२. नारद की अवतारणा कलहप्रिय और स्वरसाधक के रूप में सर्वत्र की गई है।

३. अर्जुन की वीरता का वर्णन दूतवाक्य (श्लो. ३२-३३), दूतघटोत्कच (श्लो. २२) और ऊरुभंग (श्लो. १४ में) किया गया है।

४. राजाओं का शरीर से मरकर भी यशःशरीर से चिरकाल तक जीवित रहने का विचार 'नष्टाः शरीरैः क्रतुभिर्धरन्ते' (पञ्चरात्र श्लो. १, २३) तथा 'हतेषु देहेषु गुणा धरन्ते' (कर्ण. श्लो. १७) में वर्णित है।

५. लक्ष्मी केवल साहसी के पास रहती है और संतोष नहीं धारण करती। ऐसा वर्णन चारुदत्त, दूतवाक्य, पञ्चरात्र और स्वप्नवासवदत्तम् में पाया जाता है।

---

१. तन्त्रीषु च स्वरगणान् कलहांश्च लोके। (अविमारक ४।२)
तन्त्रीश्च वैराणि च घट्टयामिम (बाल. १।४)

अन्त में कतिपय अन्य साम्यों को भी परिगणित करते हुए यह सिद्ध किया जाता है कि अन्तःसाक्ष्य के आधार पर तेरहों नाटक एक ही कवि की प्रतिभा से प्रसूत हैं—

१. पताकास्थानकों और नाटकीय व्यंग्यों में काफ़ी समता।

२. समान नाटकीय स्थितियाँ।

३. समान नाटकीय दृश्य।

४. समान अप्रस्तुत विधान।

५. समान वाक्यविन्यास और कथोपकथन।[1]

६. समान छन्द एवं अलंकारविधान।

७. समान नाटकीय पात्रों के नाम।

८. समान सामाजिक व्यवस्था का चित्रण।[2]

बहिःसाक्ष्य—अनेक आचार्यों ने इनके नाटकों के उल्लेख और गद्यांशों या पद्यांशों के उद्धरण अपने ग्रन्थों में दिए हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि ये नाटक महाकवि भासरचित ही हैं। यहाँ कतिपय आचार्यों एवं कवियों का साक्ष्य दिया जाता है—

१. आचार्य अभिनवगुप्तपाद (१० वीं शती) ने नाट्यशास्त्र पर टीका करते हुए क्रीडा के उदाहरण में स्वप्नवासवदत्तम् का उल्लेख किया है—

'क्वचित् क्रीडा। यथा वासवदत्तायाम्।'

२. भोजदेव (११वीं शती) के 'शृङ्गारप्रकाश' में 'स्वप्नवासवदत्ते पद्मावतीमस्वस्थां द्रष्टुं राजा समुद्रगृहकं गतः।' ... आदि का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

३. शारदातनय (१२वीं शती) ने 'भावप्रकाशन' में प्रशान्त नाटक की व्याख्या करते हुए पूरा स्वप्नवासवदत्तम् का कथानक उद्धृत किया है।

४. सर्वानन्द (११वीं शती) ने 'अमरकोशटीकसर्वस्व' में शृङ्गार के

---

१. देखिए डा० सुकथन्कर का (भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट के १९२३वें वार्षिक विवरण परिशिष्टांक में प्रकाशित) 'Studies in Bhasa, iv' 'Recurreuce and parallelisms' की सूची।

२. देखिए—पुशलकर 'Bhasa : A study' पृ० ५-२१।

भेद करते हुए धर्म, अर्थ और काम की गणना की है। इसी में अर्थ के उदाहरणस्वरूप उदयन और वासवदत्ता के विवाह का वर्णन किया हैं।

५. रामचन्द्र और गुणचन्द्र (१२वीं शती का उत्तरार्द्ध) के 'नाट्यदर्पण' में उद्धृत—'यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्ते शेफालिकाशिलातलमवलोक्य वत्सराजः'...आदि से स्वप्नवासवदत्तम् का भासकृत होना स्पष्ट सिद्ध है।

६. राजशेखर ने सूक्तिमुक्तावली में स्पष्ट ही घोषित किया है—

भासनाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षितो परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोभून्न पावकः॥

इस प्रकार राजशेखर ने पूरे नाटकचक्र में से स्वप्नवासवदत्तम् को तो अग्निपरीक्षा के द्वारा भी भासकृत सिद्ध किया है।

७. बाणभट्ट द्वारा उल्लिखित विशेषताओं को कसौटी मानकर भास के नाटकों की यदि परीक्षा की जाय तो बड़ी सरलता से नाटकचक्र के नाटकों का रचयिता भास घोषित किया जा सकता है।[१]

८. वाक्पतिराज (८वीं शती) ने गउडवहो (५, ८००) में भास को 'अग्निमित्र' कहा है। इस विशेषण को दृष्टिपथ में रखकर डा० विंटरनित्ज, डा० बनर्जी शास्त्री और प्रो० घटक आदि ने भास के नाटकों को प्रमाणित सिद्ध किया है।

९. जयदेव (१२वीं ई० शती) ने प्रसन्नराघव की प्रस्तावना में भास के काव्य की मुख्य विशेषता हास मानी है।[२] इसके उदाहरण 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण, प्रतिमा और मध्यमव्यायोग में पाए जाते हैं।

१०. दण्डी ने 'अवन्तिसुन्दरीकथा' में भास के काव्यगुणों का वर्णन करते हुए बताया है कि—(१) मुख-प्रतिमुख सन्धियाँ इनके काव्यों में स्पष्ट लक्षित

---

१. विशेष देखिए—पुशलकर–Bhasa A Study, पृष्ठ ३७-४२

२. भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः।
. . . .
केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय॥ (प्रस्तावना, प्रसन्नराघव)

होती हैं तथा (२) अनेक वृत्तियों के द्वारा इन्होंने अपने काव्य में विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति की है।[1]

इस प्रकार वाह्य साक्ष्यों में वाण, वाक्पति, जयदेव और दण्डी के द्वारा निर्दिष्ट विशेषताओं पर ध्यान देने से यह निश्चित हो जाता है कि त्रिवेन्द्रम् में सम्पादित भास-नाटकचक्र के सभी नाटक भास की प्रामाणिक कृतियाँ हैं।

भास के तेरह नाटकों को कथावस्तु के आधार पर यों बाँट सकते हैं—

१. उदयन-कथा—इन ऐतिहासिक नाटकों के प्रणयन में कवि को गुणाढ्य की 'वृहत्कथा' से पर्याप्त सहायता मिली होगी ऐसी डा० कीथ की मान्यता है।[2] पर भास के नाटकों में वर्णित घटनाएँ अधिक सत्य और गम्भीर हैं जब कि कथासरित्सागर आदि में केवल सामान्य उल्लेख मात्र है। इसलिए उदयन की कथाओं के लिए भास पर अधिक विश्वास किया जाता है अपेक्षाकृत उक्त दो ग्रन्थों के।[3]

२. महाभारत-कथा—महाकवि भास ने महाभारत के कथानकसूत्रों को लेकर मनोरम कल्पना का उसमें सम्मिश्रण करके उसे नाटकीय परिधान दिया है। कई नाटकीय परिस्थितियाँ कवि की मौलिक प्रतिभा का प्रतीक हैं। इन्होंने कई नाटकों के पात्रों के चरित्र भी अपनी रुचि और सुविधा के अनुसार परिवर्तित कर लिए हैं जैसे दुर्योधन, कर्ण, हिडिम्बा, घटोत्कच आदि के।

३. कृष्ण-कथा—कृष्णकथा पर आधारित 'बालचरित' का मूल स्रोत डा० स्वरूप और डा० ध्रुव ने हरिवंशपुराण को माना है पर उसे मानने पर भास का समय ४ थी शती ईस्वी मानना होगा जो कि उचित नहीं, अतः डा० वेबर का ही मत ग्राह्य मालूम होता है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि इस

---

१. सुविभक्तमुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः॥ ११॥

२. देखिए—कीथ-कृत संस्कृत ड्रामा, पृ० १००।

3: 'Bhasa' treats the incident in a more realistic and serious fashion than does the light-hearted account of the Kathasaritsagar and herein he is probably more faithful to the Udayana legends.' J: A. O. S. 43 page 169.

नाटक में कृष्ण का आरम्भिक काल का रूप चित्रित है। डा० कीथ ने विष्णु-पुराण और भागवतपुराण से भी पूर्व वालचरित की रचना मानी है।

४. राम-कथा—प्रतिमा की कथावस्तु का मूल आधार वाल्मीकीय रामायण के द्वितीय-तृतीय स्कंध हैं जिनसे कवि ने कोरा कथानक लिया है। उसकी साज-सज्जा में कवि ने अपनी मौलिक प्रतिभा का विनियोग किया है। इनके चरित्र रामायण की अपेक्षा अधिक उदात्त और भावोद्बोधक हैं। अभिषेक नाटक के लिए कवि ने किष्किन्धा, सुन्दर और युद्ध काण्डों से सामग्रीसंचयन किया है।

५. लोक-कथा (मौलिक कल्पना)—चारुदत्त के लिए किसी निश्चित स्रोत का पता नहीं चलता। एक वेश्या का निर्धन वणिक्प्रेम तो लोक-कथा के रूप में वहुत समय से प्रचलित था। वैसे कवि की मौलिक कल्पना भी हो सकती है। यों तो जातक की 'सुन्दरी-कथा' को संभावित स्रोत माना जाता है और इसकी वहुत कुछ संभावना भी है। डा० स्वरूप की निश्चित धारणा है कि अविमारक की कथा कवि-कल्पना-प्रसूत है। डा० ध्रुव इसे लोकगीतों पर आधृत मानते हैं।

भासनाटकचक्र के नाटकों का संक्षिप्त परिचय

१. स्वप्नवासवदत्तम्—इस नाटक में ६ अङ्क हैं। इसमें स्वप्न को यथार्थ में परिणत करके कवि ने सफल प्रेम का मनोरम चित्रण किया है। मंत्री यौगन्धरायण अपने वुद्धि-वैभव के वल पर उदयन के अपहृत राज्य को पुनः प्राप्त कराता है। वह 'वासवदत्ता अग्नि में जल गई' ऐसा प्रवाद फैला कर पद्मावती से विवाह कराता है जिससे उदयन पुनः राज्य प्राप्त करते हैं।

२. प्रतिज्ञायौगन्धरायण—यह नाटक ४ अंकों का है। 'स्वप्नवासवदत्तम्' के पूर्व की कथा इसमें निवद्ध है। मंत्री यौगन्धरायण के प्रयत्न से वत्सराज उदयन और अवन्तिकुमारी वासवदत्ता के रहस्यमय (गुप्त) परिणय और मंत्री के कौशल तथा दृढ़ प्रतिज्ञा का रोमांचक वर्णन है।

३. ऊरुभंग—इस एकांकी में भीम के प्रतिज्ञा-निर्वाह की दृढ़ता का भयानक (रौद्र) एवं वीररसपूर्ण वर्णन है। भीम और दुर्योधन का गदा युद्ध

में दुर्योधन की कारुणिक मृत्यु का वर्णन है। संस्कृत नाट्य-परम्परा में एक मात्र यही दुःखान्त नाटक है !

४. दूतवाक्य—यह एक अङ्क का व्यायोग है। भास ने इसमें सर्वथा विरुद्ध प्रकृति के दो पात्रों को चुना है, एक जहाँ अपनी उदारता के कारण ऊर्ध्वमुखी प्रवृत्ति का है वहाँ दूसरा ईर्ष्या की ज्वाला में जलता हुआ निम्नगामी मनोवृत्ति का प्रतीक। महाभारत-युद्ध के विनाशकारी परिणाम से सबकी रक्षा के लिए पाण्डवों की ओर से श्रीकृष्णका सन्धि-प्रस्ताव लेकर जाना पर दुर्योधन की सभा से विफल होकर लौटना इसमें वर्णित है। कृष्ण और दुर्योधन के कथोपकथन में नाट्कीयता का चरम निदर्शन है।

५. पंचरात्र—तीन अंकों के इस समवकार में तथ्य (फैक्ट्स) और कथ्य (फिक्शन) का सम्यक् सम्मिलन हुआ है। विराट पर्व के कथासूत्र को लेकर कवि ने इस सुन्दर नाटक का कल्पनापूर्ण निर्माण किया है। द्रोणाचार्य को दक्षिणा-रूप में पाण्डवों को आधा राज्य देने का वचन और अज्ञातवास की स्थिति में पाँच रात्रि के भीतर ही पाण्डवों के मिलने पर दुर्योधन का आधा राज्य दे देना ही इसकी कथावस्तु है।

६. दूतघटोत्कच—अभिमन्यु वध के पश्चात् अर्जुन के प्रतिज्ञा करने पर श्रीकृष्ण का घटोत्कच को धृतराष्ट्र के पास विनाश की सूचना देने के लिए भेजना और अन्त में भयंकर युद्ध। उद्धत वीर घटोत्कच और दुर्योंधनादि का वार्तालाप बड़ा सफल बन पड़ा है।

७. कर्णभार—प्रस्तुत उत्सृष्टिकांक में कर्णका ब्राह्मणवेशधारी इन्द्र को अपना कवच-कुण्डल देना वर्णित है। इसमें कर्ण के उज्ज्वल चरित्र एवं दान-शीलता का प्रभावशाली निरूपण किया गया है।

८. मध्यमव्यायोग—इस व्यायोग में मध्यम पाण्डव (भीम) का मध्यम ब्राह्मण कुमार की रक्षा करना और हिडिम्बा से अन्त में मिलन वर्णित है। पुत्र का पिता को न पहचानते हुए धृष्टतापूर्वक माँ के सम्मुख ला उपस्थित करना बड़ा ही सरस और कौतूहलपूर्ण है।

९. प्रतिमा—सात अंकों के इस नाटक में राम-वनवास से रावण-वध तक की कथा वर्णित है। भरत का ननिहाल से अयोध्या आते हुए

प्रतिमा-मन्दिर में अपने पिता राजा दशरथ की 'प्रतिमा' दिवंगत पूर्वजों में देख उनकी मृत्यु का अनुमान लगा लेना वर्णित है ।

१०. अभिषेक—कुल छः अंक हैं। रामायण के किष्किंधा, सुन्दर और युद्ध काण्डों की संक्षिप्त कथा पर इसका कथानक आधारित है और अन्त में रामराज्यभिषेक भी वर्णित है ।

११. अविमारक—छः अंक हैं। राजा कुन्तिभोज की पुत्री कुरंगी का राजकुमार अविमारक से प्रणय एवं विवाह वर्णित है । अविमारक का संकेत कामसूत्रों में है अतः इसे लोककथानक कह सकते हैं ।

१२. चारुदत्त—चार अंकों का एक 'प्रकरण' है । शूद्रक के प्रसिद्ध 'मृच्छकटिक' नाटक का इसे आधार माना जाता है । इस अधूरे नाटक में निर्धन पर सदाचारी ब्राह्मण चारुदत्त तथा गुणवती वेश्या वसन्तसेना का प्रणय वर्णित है। बृहत्कथा में वेश्या-ब्राह्मण के प्रेम पर आधारित कई कहानियाँ हैं, बाद में वे लोककथाओं के रूप में प्रचलित हो गईं, अतएव इस नाटक का भी आधार यही लोककथाएँ मानी जा सकती हैं ।

१३. बालचरित—यह एक पौराणिक नाटक पाँच अंकों का है । इसका उपजीव्य हरिवंश पुराण माना जाता है । इसमें कृष्ण-जन्म से कंस-वध तक की कथाएँ वर्णित हैं ।

नाटकों की सामान्य विशेषताएँ—भास के पात्र चाहे स्त्री हों या पुरुष सामान्य भूमिका पर ही सर्वदा दृष्टिगत होते हैं । उन्हें हम कल्पलोक के प्राणी नहीं कह सकते, जिनमें वायवीय तत्त्वों के कारण कुछ अलौकिकता या अस्वाभाविकता आ गई हो । यही कारण है कि श्रोता या पाठक इनके नाटकों को देखते-सुनते पात्रों के साथ पूरी सहानुभूति प्रकट करता है एवं अपनी भावनाओं की मानसिक क्रिया-प्रतिक्रियाओं को उनमें बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से पाता है । देवगुणसम्पन्न पात्र जैसे राम, सीता, लक्ष्मण आदि में भी हम मानवीय भावों की ही झलक पाते हैं । उनके विचारों और क्रियाओं में कहीं भी असाधारणता नहीं आने पाई है !

जहाँ तक पात्रों के मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण का प्रश्न है हम भास

को बिल्कुल आधुनिक युग के नाटककारों के साथ पाते हैं। श्री मीरबर्य ने भास के इस गुण की प्रंशसा की है।[1]

इन्होंने अपने नाटकों में जितने पात्रों का विनियोजन किया है सभी सार्थक हैं और सबका अपने-अपने स्थान पर एक विशेष महत्त्व है । कवि ने व्यक्तिवैचित्र्य पर सर्वथा ध्यान दिया है और यही कारण है कि एक वर्ग के प्रतीक के रूप की अपेक्षा व्यक्तिगत विशेषताओं से युक्त पात्र हमारे सामने आते हैं।

महाभारत-कथा पर आधारित नाटकों के चरित्र-चित्रण में यद्यपि कवि को स्वतंत्रता नहीं थी, फिर भी कर्ण और दुर्योधन का चरित्र हमारे हृदय में उदात्त भावनाओं को उत्पन्न करने में समर्थ है और इस प्रकार सहज ही वे सहानुभूति के पात्र बनते हैं।

लोककथाओं पर आश्रित नाटकों में कवि को कल्पना की रंगीनी का विनियोग करनेकी काफी छूट थी फिर भी उनमें अस्वाभाविकता नहीं है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि भास के पात्र कालिदास और बाण की भाँति न तो रोमांटिक और कल्पनाप्रवण है, न भवभूति की भाँति काव्यात्मक और भावुक और न तो भट्टनारायण की भाँति अति ओजस्वी, न श्रीहर्ष की भाँति अति काल्पनिक और न शूद्रक की भाँति हास्य-प्रधान और अति यथार्थ ही हैं।

नाट्यकला—नाटककार और भास ने अपने नाटकों की विषयवस्तु का चुनाव बड़ी बुद्धिमानी और कुशलता से किया है। इनकी भाषा में प्रसाद और माधुर्य के साथ यथा-अवसर ओजगुण की भी प्रधानता पाई जाती है। घटनाओं का विधान अत्यन्त स्वाभाविक होते हुए भी प्रभावोत्पादक और कौतूहलपूर्ण है। पात्रों के चरित्रचित्रण में व्यक्ति-वैचित्र्य के द्वारा सजीवता ला देना भास का प्रिय कौशल है! वाक्य सरल, चुटीले और भावोत्तेजक होने के कारण कथोपकथन के स्थलों पर विशेष नाटकीयता ला देते हैं। घटनाओं का निश्चित लक्ष्य की ओर उत्तरोत्तर बढ़कर प्रभावान्वित करना तथा अन्तर्द्वन्द्व और अघात-प्रतिघातों में पड़े हुए पात्र की चरित्रगत विशेषताओं का उद्घाटन करना

---

१. '...in psychological subtlety Bhasa is almost modern'
J. A. S. B. 1917 p. 278

इनके नाटकों का मुख्य गुण है। इनके नाटक अपने युगधर्म और सांस्कृतिक तथा सामाजिक गति-विधियों के प्रतिनिधि माने जाते हैं।

इनके नाटकों को देखने से पता चलता है कि रामचरित्र से सम्बद्ध नाटकों में न तो वह रसवत्ता ही पाई जाती है और न चरित्रों का चित्रण ही उतना प्रभावपूर्ण हो सका है जितना कि एक रससिद्ध नाटककार के लिए अपेक्षित है। महाभारत या कृष्णचरित्र से सम्बन्ध रखने वाले कथानकों में नाटककार की भावनाएँ अधिक उदात्त हैं और रसानुकूल घटना-विधान का नियोजन किया गया है अतः ये नाटक मध्यम श्रेणी में आते हैं। तीसरी स्थिति उन नाटकों की है जो उदयन-कथा पर आधारित हैं! इन्हें हम कवि की सर्वोत्कृष्ट रचनाएँ मान सकते हैं तथा इनमें नाटककार या कवि पाठकों या दर्शकों को भावमग्न करने में अधिक सफल हुआ है। प्रणय जैसे व्यापक विषय को लेकर कवि ने बड़ी सफलता से मानव-मन की भावनाओं का रंगीन चित्रण किया है। महाकवि भास आदर्शवादी नाटककार के रूप में हमारे सामने आते हैं। उन्होंने सामाजिक और पारिवारिक आदर्शों का निर्वाह बड़ी मनोरमता से किया है। नाटकीय व्यंग्य से दर्शक या पाठक के कौतूहल का पूर्ण वर्द्धन हुआ है। 'प्रतिज्ञा' के द्वितीय अंक में वासदत्ता के माता-पिता जब अपनी पुत्री के भावी पति के बारे में विचार करते हैं उसी समय कंचुकी का 'वत्सराज' कहना और वन्दी उदयन के आने का समाचार मिलना 'घटना-साहचर्य' का उज्ज्वल उदाहरण है। ऐसा ही 'अभिषेक' के पाँचवें अंक में सीता-राव -संवाद के सिलसिले में द्रष्टव्य है।

भास के नाटक उस समय रचे गए जब कि नाटक-कला का पूर्ण विकास नहीं हो पाया था, इस कारण भी कुछ त्रुटियाँ इनके नाटकों में आ गई हैं। कहीं-कहीं 'निष्क्रम्य प्रविशति' आदि द्रुतगति वाले नाटकीय निर्देशों से अस्वाभाविक औपचारिकता-सी आ गई है। कवि ने कथानक-सूत्रों के संघटन में कहीं-कहीं समय की अन्विति का ध्यान नहीं दिया है। कृष्ण के निर्जीव शस्त्रास्त्रों को मानवरूप में रंगमंच पर उपस्थित करके सारी स्वाभाविकता नष्ट कर दी गई है। नाट्यशास्त्र के द्वारा वर्जित दृश्यों (युद्ध, मरणादि) को भी इन्होंने 'ऊरुभंग' आदि में सामाजिक के सम्मुख उपस्थित किया है। इनके नाटकों

की अस्वभाविकता का कारण अपरिचित पात्रों का रंगमंच पर सहसा उपस्थित होना भी है।[१] इसी प्रकार की त्रुटि 'स्वप्नवासवदत्तम्' में 'वासवदत्ता जली नहीं है' ऐसा कहकर बाद की घटनाओं को नीरस और सामान्य बना देने में है। सामाजिकों की सारी उत्कंठा और भविष्य के परिणाम की अनिश्चितता इस भावना के बद्धमूल होने पर समाप्तप्राय हो जाती है।

कतिपय त्रुटियों के होते हुए भी भास की कला महान् है। उसमें प्रौढत्व न होने पर भी भाव-गांभीर्य और रमणीयता है। वीर रस के तो ये सफल नाटककार हैं ही पर मानव के मन का कोमल से कोमलतम पक्ष भी इनकी लेखनी के लिए अछूता नहीं। इन्होंने प्रणय, करुणा एवं विस्मय का बड़ा सुन्दर निर्वाह अपनी कृतियों में किया है।

भास की शैली—शैली की सारी विशेषताओं से विशिष्ट भास कवि की अभिव्यंजना बड़ी ही प्रभावोत्पादक है। प्रसाद और ओज के साथ-साथ माधुर्य की संयोजना सहृदयों को मुग्ध कर देती है। पूरे के पूरे नाटक पढ़ जाइए, कहीं भी दूरारूढ़ कल्पना, समासबहुलता या प्रवाह में अवरोध नहीं मिलेगा। इसे कुछ विद्वानों ने रामायण का प्रभाव माना है। इनकी शैली अलंकारों पर नहीं, भावनाओं के निखार पर गर्व करती है जिससे कृत्रिमता की जगह स्वाभाविकता आ गई है। सरलता से समझ में आने वाले उन अलंकारों का प्रयोग भास ने किया है जिनसे वस्तु-चित्र और भी स्पष्ट हो गए हैं। भावबोधन में जैसी सफलता इन्हें मिली, इनके पूर्ववर्ती किसी भी कवि को नहीं। इसका एकमात्र कारण इनकी सरल शैली और अद्‌भुत मनोवैज्ञानिक दृष्टि ही है। इनके काव्य को हम मानव-मन के अन्तस् की विभिन्न स्थितियों में होने वाली प्रतिक्रियाओं का संकलित-चित्र (एलबम) आसानी से कह सकते हैं। पिता की मृत्यु का कारण जान कर भरत के हार्दिक उद्‌गारों की मार्मिक अभिव्यञ्जना कवि ने एक ही लघु श्लोक में कर दी है—'तुम्हारी पुत्र के प्रति कितनी प्रगाढ़ ममता थी और हमारा भाई के प्रति यह ऐसा

१. विशेष के लिए देखिए—पुशलकर : Bhasa : A study, P. 1024.

प्रेम है ?'[1] बात सीधी पर बड़ी मर्मस्पर्शिणी है। वे प्रकृति को मानवीय भावों के प्रतिबिम्ब रूप में उपस्थित करते हैं। पाठक या दर्शक इन वर्णनों को सुनते ही भावमयता की उच्च भूमिका में पहुँच जाता है और साधारणीकरण की स्थिति आ जाती है।[2]

भास के नाटकों में तुलसी के समान पारिवारिक व सामाजिक सम्बन्धों एवं आचारों का आदर्श उपस्थित किया गया है।[3]

भास ने लोकोक्तियों के द्वारा गागर में सागर भर दिया है।[4] भास के संश्लिष्ट चित्र नाटकों के कथानक में विशेष प्रभाव उत्पन्न कर देते हैं।[5]

१. अद्य खल्ववगच्छामि पित्रा मे दुष्करं कृतम्।
कीदृशस्तनयस्नेहो भ्रातृस्नेहोऽयमीदृशः ॥ प्रतिमा ४।१२

२. देखिए—अविमारक ४।४, प्रतिमा २।७, तथा स्वप्नवासवदत्तम् ४।६

३. देखिए—सूर्य इव गतो रामः सूर्यं दिवस इव लक्ष्मणोऽनुगतः।
सूर्यदिवसावसाने छायेव न दृश्यते सीता ॥ प्रतिमा २।७
तथा
गोपहीना यथा गावो विलयं यान्त्यपालिताः।
एवं नृपतिहीना हि विलयं यान्ति वै प्रजाः ॥ प्रतिमा ३।२४

४. 'आपदं हि पिता प्राप्तो ज्येष्ठपुत्रेण तार्यते।' १६। मध्यमव्यायोग।
'रुष्टोऽपि कुञ्जरो वन्यो न व्याघ्रं धर्षयेद्वने।' ४४। मध्यमव्यायोग।

५. स्वप्न० १।१६ तथा प्रतिमा १।३ और १।१८

कर्णभार-समालोचना

कथावस्तु—कवि अपनी भावभूमि के प्रसार के लिए एक क्षीण-सा आधार लेता है पर उसी को अपनी प्रतिभा, सूझ-बूझ और कल्पना के द्वारा सजा कर पाठक के सम्मुख ऐसा उपस्थित करता है कि उसे पढ़ कर वह चमत्कृत हो जाय। महाकवि भास ने भी अपने नाटकों का आधारसूत्र महाकाव्यों से ग्रहण किया है और उसी का विस्तार अपनी मौलिक उद्भावना और बहुवस्तु-स्पर्शिना प्रतिभा के सहारे बड़े मनोरम वातावरण में उपस्थित किया है।

मूलस्रोत—प्रस्तुत नाटक महाभारत की कथा पर आश्रित है जैसा कि हम पूर्व निर्देश कर चुके हैं। महाभारत के शान्तिपर्व के पंचम अध्याय में कर्ण की अनेक कठिनाई, बाधाओं और समस्याओं का उल्लेख हैं। यह मानना पड़ेगा कि कर्ण की पराजय इन्हीं बाधाओं के द्वारा हुई वरना पूरे महाभारत का इतिहास ही कुछ बदला हुआ सामने आता।

छद्म वेश में इन्द्र ने अर्जुन के लिए कर्ण से उसका बहुमूल्य और स्वाभाविक कवच दान में ले लिया। दानवीर कर्ण अपने पिता सूर्य के द्वारा स्वप्न में वर्जन किए जाने पर भी उसे प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मणवेशधारी इन्द्र को देते हैं! कुपित ब्राह्मण और परशुराम के शाप, कुन्ती के वरदान माँगने और शल्य के द्वारा वारंवार अनुत्साहित किए जाने के कारण कर्ण को बड़ी बाधा हुई। भीष्मपितामह ने इनके अधिकार को भी सीमित कर दिया था। कृष्ण ने अपनी कूटनीति और अर्जुन की दैवी शस्त्रास्त्रों की सहायता से कर्ण के उत्साह को और भी ठण्डा कर दिया। इस स्थिति में भी वह अपने मन में जय-पराजय को समान रूप से ग्रहण करता हुआ युद्ध के लिए कटिबद्ध होता है।

कर्ण के आख्यान महाभारत के अनेक पर्वों में यों निबद्ध हैं :—

१. वन पर्व के ३००-३१० अध्यायों में सूर्य कर्ण को इन्द्र की कपट-लीला से बचने के लिए चेतावनी देते हैं। यह कथा जिस भाग में वर्णित है उसे

कुण्डल-हरण पर्व कहा गया है। जब कर्ण ने सूर्य की चेतावनी पर कुछ भी ध्यान न दिया तो सूर्य ने इन्द्र से कवच और कुण्डल के बदले में एक मायाविनी शक्ति माँगने को कहा। महाभारत का कर्ण सूर्य के इस सुझाव को मान जाता है और उससे वह शक्ति प्राप्त करता है जिसके द्वारा बाद में घटोत्कच की मृत्यु होती है। यह कथा शान्ति और वन पर्वों के अतिरिक्त आदि पर्व के अन्तर्गत सभापर्व के अध्याय ६८।४४-४५ और अध्याय १२०। ३६-५३ में निबद्ध है।

२. कर्ण का अर्जुन से घोर संग्राम और अर्जुन के द्वारा कर्ण के वध की कथा कर्ण पर्व में निबद्ध है। कर्ण कौरवी सेना का संचालन करते हुए अर्जुन को परास्त करने के लिए कटिबद्ध होता है। अर्जुन के लिए जैसे कृष्ण सारथी थे वैसे ही कर्ण के लिए शल्यराज। कृष्ण ने जैसे इस शर्त पर रथ चलाना स्वीकार किया था कि वे रणक्षेत्र में अस्त्र नहीं ग्रहण करेंगे वैसे ही शल्य ने भी यह वचन ले लिया था कि किसी भी समय वह जो चाहे जिससे चाहे कह सकता है। उसके वचन की धारा को रोकने का किसी को अधिकार नहीं।

महाभारत का शल्य अनेक कटूक्तियाँ बोलता है और कर्ण की निर्बलता का वर्णन करके उसका उत्साह भंग करता है। वह अनेक अपशकुनों को दिखा कर बात-बात में कर्ण से झगड़ बैठता है। ऐसी ही परिस्थिति में रह कर कर्ण पाँच पांचालों को मारता है तथा युधिष्ठिर को निःशस्त्र करके उनका अपमान करता है।

३. कर्ण की अस्त्रशिक्षा और परशुराम के अभिशाप की कहानी महाभारत के कर्ण पर्व के २६ वें अध्याय और शान्ति पर्व के तीसरे अध्याय में वर्णित है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कर्ण की इतस्ततः बिखरी हुई कथाओं को संकलित करके उसका एक ऐसा संघटनात्मक रूप उपस्थित किया गया है जो अपनी समग्रता में एक प्रभाव उत्पन्न कर सके।

मूल स्रोतों से अन्तर

१. मूलकथा में इन्द्र का ब्राह्मण भिक्षुक के रूप में आना और कर्ण से कवच कुण्डल का दान माँगना बहुत पहले ही वर्णित है जब कि पाण्डव जंगल में निवास कर रहे थे, किन्तु कवि ने उस घटना का संयोजन युद्ध को जाते हुए सैनिक-परिच्छद में उपस्थित कर्ण के साथ किया जिससे एक

प्रभावात्मकता उत्पन्न होती है और एकाएक इस घटना के घटित होने पर कुछ आश्चर्य और कौतूहल भी होता है, साथ ही करुणा की गहरी अनुभूति, एक बार दर्शक को कर्ण के प्रति सहानुभूति व्यक्त करने के लिए विवश होना पड़ता है।

२. महाभारत में सूर्य पहले ही कर्ण को स्वप्न में आकर चेतावनी दे देते हैं कि इन्द्र के कपट-जाल में मत पड़ना किन्तु कवि ने इस कथांश को निकाल दिया है क्योंकि इससे उस घटना का प्रभाव और कौतूहल को जागृत करने की क्षमता नष्ट हो जाती। बहुत संभव है उसकी समय, घटना और क्रिया की अन्विति भी न बन पाती।

३. मूलकथा में तो कर्णका इन्द्र से शक्ति की स्वयं याचना करना वर्णित है पर भास ने अपने चरित्रनायक को जिस उच्च भूमिका पर प्रतिष्ठित किया है उसके लिए सम्भवतः यह प्रतिदान की इच्छा शोभन नहीं मालूम होती। अतः वह अपने कवच-कुण्डल निःस्पृह होकर दान करता है और देवदूत के कहने पर भी उसके बदले में इन्द्रप्रदत्त शक्ति को नहीं ग्रहण करना चाहता। अन्त में स्वयं देवदूत ब्राह्मण-वचन के पालनार्थ शक्ति को स्वीकार करने के लिए कहता है तब कर्ण इसीलिए उसे स्वीकार करता है कि ब्राह्मण की आज्ञा उसने कभी उल्लङ्घित नहीं की।

४. नाटक के शल्य में महाभारत के शल्य से पर्याप्त अन्तर है। नाटक का शल्य एक मृदुभाषी, शुभचिंतक और कर्ण का सहायक-सा प्रतीत होता है। उसका रूप उचित परामर्शदाता सारथी की भूमिका में निखर आता है। महाभारत का शल्य क्रूर, निर्दय, कर्ण का विरोधी और बात-बात में कर्ण को कटुवचन से आघात पहुँचाने वाला है।

५. नाटक में यह बड़ी कौतूहल और आश्चर्य की बात है कि ब्राह्मण-वेशधारी इन्द्र प्राकृत भाषा का प्रयोग करता है, जब कि यह सर्वमान्य नियम है कि केवल भृत्य या अशिक्षित वर्ग और स्त्रियाँ ही प्राकृत का प्रयोग करें तो एक शास्त्रज्ञ ब्राह्मण का वैसा बोलना अस्वाभाविक और शंकास्पद है।

डा० जी० के० भट्ट एक निबन्ध में 'कर्णभार की समस्याओं'[1] पर विचार

१. देखिए—'The problem of Karnbhara' (Journal of the Universty of Bombay.Nov. 1947.Vol.XVI New Series part 3.)

करते हुए लिखते हैं कि कविवर भास ने कर्ण की कथा में कुछ नवीन बातें जोड़ कर उसे पूर्ण बनाया है। ये बातें कविकल्पनाप्रसूत हैं। इसी सिलिसिले में वे कर्ण के उस रूप का वर्णन करते हैं जिसे कवि ने अपने नाटक के लिए चुना है। कर्ण सर्वप्रथम जब रंगमंच पर आता है तो उसका मानस अनेक बाधाओं एवं तज्जन्य चिन्ताओं से ग्रस्त है। यही स्थिति अन्त तक बनी रहती है और इसी मानसिक दशा में वह अपने शस्त्रशिक्षण और परशुराम के अभिशाप की भी बात शल्य से कह डालता है।

इस प्रकार कथानक श्री देवधर के विचार से कुछ अंशों में सही नहीं हैं। महाभारत के शल्य पर्व के अन्तर्गत ३६ वें अध्याय में निवद्ध कथा कुछ इस प्रकार है—

कर्ण शल्य से अपने कृष्ण एवं अर्जुनादि से युद्ध का वर्णन करते-करते एक पीड़ा और उदासी की भी बात उद्घाटित करता है। वह बतलाता है कि पहले कभी उसने किस प्रकार अज्ञानवश एक ब्राह्मण की पवित्र गाय के बछड़े की निर्मम हत्या कर डाली थी। इसी से कुपित ब्राह्मण ने उसे शाप दिया कि जब युद्ध क्षेत्र में तुम्हारा पहिया पृथ्वी में धँस जायगा तो तुम्हारी भी इसी प्रकार की निर्मम हत्या शत्रु के द्वारा होगी। इसी समय उसने शल्य से अपने कपट-व्यवहार से अर्जित अतएव परशुराम के शाप से व्यर्थ हुई अस्त्र-विद्या की भी कथा कही है। वह न तो अर्जुन से डरता है न कृष्ण से ही, पर ब्राह्मण और परशुरामका शाप उसके मानस को बोझिल बना रहा है।

इन्द्र का कवच कुण्डल प्राप्त कर लेने के पश्चात् पश्चात्ताप करना उसकी सहृदयता का द्योतक है जिसके फलस्वरूप वह स्वयं ही देवदूत भेजकर कर्ण को अमोघ शक्ति देता है। यह कवि की भावना और मौलिक कल्पना का ही परिणाम है।

गृहीत रूप :—नान्दी पाठ के बाद सूत्रधार यह निर्देश करता है कि दुर्योधन का दूत कर्ण के पास युद्ध प्रारम्भ होने वाला है, इसकी सूचना देने जल्दी-जल्दी जा रहा है। कर्ण को युद्ध की साज-सज्जा से सज्जित देखकर भट को दुर्योधन की आज्ञा का निवेदन आवश्यक न जान पड़ा। वह स्वयं ही युद्ध क्षेत्र की ओर शल्यराज के साथ प्रस्थान कर रहा है। वह यह भी ज्ञात कर लेता है कि जैसे कर्ण अपने शिविर के बाहर आए हैं वैसे ही उनका हृदय

अनेक आगत-अनागत चिन्ता और आशंका से व्याप्त हो गया है। कर्ण रंगमंच पर यथानिर्दिष्ट रूपमें प्रवेश करता है। उसका प्रथम वाक्य ओजोमय है। वह छूटते ही कहता है कि अर्जुन आज यदि रणक्षेत्र में दिखाई दे जाय तो अपने तीक्ष्ण बाणों से कौरवों की इष्ट-सिद्धि कर दूँ। वह शल्य से वहीं रथ ले चलने को कहता है जहाँ अर्जुन है। जिस प्रकार धधकती हुई अग्नि पर धीरे-धीरे राख की पर्त्त जमती है उसी प्रकार कर्ण के इन उग्र विचारों पर भी चिन्ता की पर्त्तें जमने लगती हैं। स्वयं कर्ण को भी अपनी इस असंभावित उदासीनता से बड़ा असन्तोष होता है। वह कहता है—जब युद्ध के समय शत्रु-पक्ष की चतुरंगिणी सेना पर मेरी बाण-वर्षा होती थी तो मैं क्रुद्ध यमराज-सा मालूम पड़ने लगता था पर आज इस शुभ अवसर पर जब कि मेरे अन्तर में उत्साह और वीरता का भाव जागृत होना चाहिये यह उदासी और निर्वीर्यता की-सी स्थिति क्यों उत्पन्न हो गई है ? अपनी असामयिक मानस-चिन्ताओं का विश्लेषण करते हुए महारथी कर्ण शल्य से अपना सारा पूर्व वृत्तान्त वर्णित करता है। बड़े कष्ट के साथ वह कहता है कि पहले वह कुन्ती के गर्भ से उत्पन्न हुआ पर राधा नाम की अज्ञातकुलशीला स्त्री ने उसका पालन-पोषण किया जिससे लोक में वह राधेय (राधा पुत्र) के नाम से प्रसिद्ध हुआ। आज उसे ही अपने छोटे भाई युधिष्ठिरादि से युद्ध करना होगा। बड़े दिन से जिसकी प्रतीक्षा थी वह समय आज आ गया है और वह कौरवों की अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए कृतसंकल्प है। किन्तु अनेक बन्धनों, अभिशापों और अपने वचनों के द्वारा वह जकड़ा हुआ है !

जिस प्रकार कोई अपने दैन्य की कथा किसी साथी को बैठकर सुनाए वैसे ही कर्ण अपने सारथी शल्य से कहता है। अपनी अस्त्रशिक्षा की व्यर्थता की कथा कहते हुए कर्ण कहता है कि 'पहले मैं परशुराम के आश्रम पर शस्त्र-शिक्षा प्राप्त करने के लिए गया और उस दिव्यज्योति से मण्डित अद्भुत छवि को धारण करने वाले परशु से शोभित जामदग्न्य को प्रणाम करके चुपचाप एक कोने में खड़ा हो गया।

परशुराम ने मुझे आशीर्वाद दिया और पूछा कि आप कौन हैं ? किस लिए आये हैं ? मैंने कहा कि आपसे समस्त शस्त्रास्त्र विद्या सीखने के लिए ही

आया हूँ। उन्होंने कहा कि मैं केवल ब्राह्मणों को ही शिक्षा देता हूँ न कि क्षत्रिय आदि ब्राह्मणेतर वर्ग को। मैंने उस समय गुरु से कपट किया और अपने को ब्राह्मण बतला कर अस्त्रशिक्षा ग्रहण करने लगा।

एक बार वे जंगल में फल-फूल आदि लाने अकेले जा रहे थे। मेरे अनुरोध करने पर मुझे भी अपने साथ ले लिया। वन में भ्रमण करने के कारण अधिक थक जाने से गुरुवर मेरे जंघे पर शिर रखकर सो गए। तभी एक वज्रमुख नामक कीड़ा आया जिसने मेरे जंघे में काट लिया। उस कठिन पीड़ा को, आचार्य जग न जायँ, इस भय से मैंने धैर्यपूर्वक सहन किया। कुछ देर के बाद जब उनकी निद्रा पूरी हुई. वे उठे, तो अपने वस्त्रों को रक्तरंजित देखकर और मेरे धैर्य तथा साहस से मुझे क्षत्रिय समझ कर क्रोध से काँपने लगे और मुझे शाप दिया कि समय पड़ने पर मेरे अस्त्र व्यर्थ सिद्ध हों। इसीलिए इस समय मेरे अत्युग्र अस्त्र भी निर्बल और तेजहीन से प्रतीत होते हैं। आज तो मेरी सेना के हाथी, घोड़े आदि भी ऊँघ से रहे हैं और मुझे लौट जाने को विवश कर रहे हैं। शंख और दुन्दुभि भी निःशब्द हो गये हैं।' इस बात को सुनकर शल्य को बड़ा क्षोभ होता है। कर्ण सच्चे योद्धा की भाँति शल्य के क्षोभ का निवारण करते हुए कहता है कि वह किसी प्रकार की चिन्ता न करे। क्षत्रियों के लिए रण में मरना या विजय प्राप्त करना दोनों समान रूप से श्रेयस्कर हैं। यदि वह विजयी हुआ तो अनन्त सुख भोगेगा और यदि वीर गति पाई तो स्वर्ग का द्वार उन्मुक्त रहेगा।

'ब्राह्मणों, सती स्त्रियों और योद्धाओं का कल्याण हो। मैं प्रसन्न हूँ। यह शुभ अवसर मुझे अलभ्य है इसीलिए अब समर की सीमा में प्रवेश करके युधिष्ठिर को बाँध कर तथा पराक्रमी अर्जुन को तीखे शराघातों से आहत करके सारी सेना को ध्वस्त कर दूँगा।'

इस प्रकार का दृढ़ निश्चय करके वह रथ पर चढ़ता है और शल्य से पुनः वहीं रथ ले चलने को कहता है जहाँ अर्जुन है। इधर युद्ध के प्रस्थान की तैयारी हो चुकी थी कि दैवदुर्विपाकसे एक भिक्षुक (ब्राह्मण वेशमें स्वयं देवराज इन्द्र) आता है और एक महती भिक्षा माँगता है। उसे आदरपूर्वक प्रणाम करके सन्तुष्ट करने के लिए दानवीर कर्ण सैकड़ों गायों को देने के लिए तत्पर होता है पर हठी भिक्षुक उसे नहीं स्वीकार करता। मत्त गजराजों का

समूह देने के लिए कर्ण तैयार होता है पर वह उसे भी नहीं लेता। काबुली घोड़ों, अनन्त स्वर्ण और वसुन्धरा देने पर भी वह नहीं लेता। अन्त में जब कर्ण अपने सिर को समर्पित करने को कहता है तो भिक्षक डर जाता है और हाय-हाय (अविहा-अविहा) कह कर जाने लगता है। कर्ण के लिए भिक्षुक का असन्तुष्ट होकर लौटना सह्य नहीं होता है। इसलिए वह अपने शरीर के साथ-साथ अद्भुत कवच और कुण्डलों को भी देने का वचन देता है। इस वचन को सुनते ही ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र प्रसन्न होकर दो-दो कहता है। अब कर्ण को इसमें शंका नहीं रही कि यह कपट-बुद्धि कृष्ण का ही उपाय हो सकता है। पर जब वह वचन से देने को कह चुका तो इस प्रकार का वितर्क उसे सर्वथा अशोभन लगा और हर्षयुक्त मनसे कवच-कुण्डल दे देता है। शल्य-राज से इन्द्र का कपट सह्य नहीं हुआ। वह कर्ण को दान देने से रोकता ह पर वह स्पष्ट कहता है कि इस असार संसार में कुछ भी नित्य नहीं है। यदि कुछ शाश्वत है तो वह अग्नि में डाली हुई आहुति और सत्पात्र को दिया हुआ दान ही है।

इन्द्र कर्ण से कवच-कुण्डल दान में ले तो लेता है पर बाद में उसे ग्लानि होती है और वह दूत के द्वारा कर्ण को विमला नामक अमोघ अस्त्र का वरदान भेजता है पर दानी कर्ण अपने दान का प्रतिदान नहीं चाहता। वह उसे भी स्वीकार नहीं करता पर बाद में ब्राह्मण के वचन को आदर देने के ही लिए उसे ले लेता है।

कर्ण में अपने कर्तव्य की भावना फिर जागती है और वह रथ पर चढ़ता हुआ अपने सारथी शल्य से वहीं रथ ले चलने को कहता है जहाँ पर उसका प्रतिद्वन्द्वी अर्जुन है। तत्पश्चात् नाट्य परम्परा के अनुसार भरतवाक्य से नाटक की परिसमाप्ति होती है।

इस प्रकार सम्पूर्ण कथानक में कर्ण की उदात्त भावना और दानशूरता की उज्ज्वल गाथा के साथ उसकी कठिन परिस्थितियों का मार्मिक उद्घाटन है।

चरित्र-चित्रण

कर्ण—प्रस्तुत नाटक का नायक कर्ण एक सहृदय, शूर और दानी योद्धा है। एक ओर जहाँ वह अपने उत्तरदायित्व को उत्साहपूर्वक निबाहने के लिए

आगे बढ़ाता है दूसरी ओर उसके सम्मुख अनेक बाधाएँ और निराशाए आ उपस्थित होती हैं। इसी कारण उसका उत्साह ठण्डा पड़ जाता है और निरा- । छा जाती है। शारीरिक बल से वह किसी प्रकार निबल नहीं है पाण्डवों पर वह अस्त्र प्रयोग कैसे करे। उसके गुरु (परशुराम) ने तो उ पहले ही शाप दे दिया है कि उसके अस्त्र समय पड़ने पर व्यर्थ होंगे। शल्य से अपने रथ को वहीं ले चलने के लिए कहता है जहाँ अर्जुन है उसे यह भी ज्ञात है कि दुःखित ब्राह्मण का शाप व्यर्थ नहीं जायगा। यु क्षेत्र में उसके रथ का पहिया अवश्य पृथ्वी में धँस जायगा और उसकी मृ का कारण बनेगा (इस घटना का उल्लेख यद्यपि नाटक में नहीं है पर हल्क सा संकेत 'ब्राह्मण-शाप' का अवश्य है)। कर्ण के सामने इतनी समस्या एक ही समय आ जाती हैं। वह वीर क्षत्रिय है। युद्ध के समय कर्ण के लि ये भाव सर्वथा घातक और अस्वाभाविक हैं पर अपनी भाग्य-पंक्ति को नहीं मिटा सकता। अपनी इच्छा पूर्त्ति के लिए उसमें अथाह उत्साह जिससे वह बार-बार रथ को चलाने के लिए कहता है पर कभी सफल न होता। रथ पर बैठने के पूर्व ही ब्राह्मण भिक्षुक का ओजपूर्ण दृढ़ स्वर उसे आ बढ़ने से रोक देता है। उसके हृदय में ब्राह्मण, गौ, धर्म के प्रति ब आस्था है। वह (संभवतः रथ से उतर कर) ब्राह्मण से उसकी अभिला पूछता है। वह हर प्रकार से भिक्षुक को सन्तुष्ट करना अपना परम कर्त समझता है। यद्यपि कर्ण उसकी दृढ़ व्यापक प्रभाव वाली वाणी से कु शंकित हो जाता है पर जिसने अपने जीवन में त्याग से महान् किसी अ वस्तु को माना ही नहीं उस कर्ण के लिए किसी ब्राह्मण को कुछ भी अदे नहीं है। वह निःशंक होकर उस प्राकृत-भाषा-भाषी सर्वथा विचित्र ब्राह्म को क्रमशः गाय, घोड़े, हाथी, अग्निष्टोमयाग का फल, अनन्त पृथ्वी, और अन्त में अपना सिर तक देने को तत्पर होता है। कर्ण की महान और दानवीरता वहाँ चरम सीमा पर पहुँच जाती है जब कि वह अप स्वाभाविक अंगत्राण कवच और कुण्डल को भी ब्राह्मण की रुचि के अनुस देने को स्वयं ही स्वीकार करता है। यद्यपि बाद में ब्राह्मण के प्रसन्न होने सारा षड्यंत्र उसके सामने स्पष्ट हो जाता है तथापि कर्ण को अपने विचा की क्षुद्रता तनिक भी नहीं भाती। वह शल्य के भी द्वारा वर्जन किए जाने

उन्हें निकाल कर दे देता है। कर्ण को भारतीय आदर्श और संस्कृति के प्रति अगाध श्रद्धा है, वह राजपुरुष है, साथ ही वीर योद्धा भी। वह जानता है कि राजाओं का परम कर्तव्य प्रजा का सब प्रकार से पालन करना है। शरीर विनाशधर्मी है। यदि कुछ शाश्वत है तो वह उसका यश ही है। इसकी पुष्टि वह वचन मात्र से ही न करके क्रियात्मक रूप से भी करता है। संकटापन्न कर्ण अपने कवच और कुण्डल को सब कुछ समझते हुए भी एक ब्राह्मण को इसीलिए दे देता है कि वह दान कर रहा है जो कि एक शाश्वत वस्तु है। उसमें मानवसुलभ दया की भी भावना विद्यमान है और इसीलिए वह कहता है कि मैं यद्यपि राधेय के नाम से विख्यात हूँ तथापि अन्ततः पुत्र तो कुन्ती का ही हूँ और इसीलिए ये युधिष्ठिरादि मेरे कनिष्ठ भाई हैं जो धर्मानुसार पुत्रवत् हैं[1] अतः उनपर अस्त्र प्रहार कैसे किया जाय। अन्त में जब इन्द्र के द्वारा भेजा गया देवदूत कर्ण को कवच-कुण्डल के बदले में दैवी-शक्तिसम्पन्न 'विमला' को देने की बात कहता है तो कर्ण स्पष्ट ही अस्वीकार करता है। यह है भारतीय त्याग की पराकाष्ठा जिसका चरम निदर्शन कर्ण के द्वारा होता है।

अन्त में हम देखते हैं कि कर्ण ब्राह्मण-वचन को आदर देने के कारण उस दैवी शक्ति को आशीर्वाद के रूप में ग्रहण करता हैं। नाटक के आदि से लेकर अन्त तक कर्ण एक कर्तव्यपालक वीर क्षत्रिय के रूप में चित्रित होता है। कुछ भी हो, कर्ण का जैसा चरित्र महाकवि ने उपस्थित किया है वह सर्वथा भारतीय गौरव और त्याग का प्रतिनिधित्व करता है।

शल्यराज—सम्पूर्ण नाटक पर कर्ण का व्यक्तित्व इतना प्रभाव डालता है कि अन्य पात्र उसके सम्मुख बौने से लगते हैं। शल्यराज भी जैसे कर्ण के ही चरित्र को उभारने के लिए एक माध्यम मात्र है। वह कर्ण की प्रत्येक अनुभूति से प्रभावित होकर पूरी सहानुभूति प्रदर्शित करता है। महाभारत के शल्य में यह बात नहीं है। वह क्रूर और निर्दय तथा विश्वासघाती है जब कि भास का शल्य मानवतावादी। जहाँ दुःखद घटना का वर्णन होता है

१. पितेव पालयेत् पुत्रान् ज्येष्ठो भ्रातॄन् यवीयसः।
पुत्रवच्चापि वर्तेरन् ज्येष्ठे भ्रातरि धर्मतः॥ मनु० ९।१०८

वह स्वयं भी कष्ट का अनुभव करता है। इस प्रकार सब कुछ मिलाकर देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि शल्य कर्ण की ही भाँति एक ही भावधारा में अनेक तरंगों के घात-प्रतिघात को सहता हुआ वहता चला जाता है। जहां कर्ण इन्द्र को एक ब्राह्मण समझ कर अपने एक मात्र रक्षा के साधनभूत कवच-कुण्डल को देने लगता है वहाँ शल्य का शुभचिन्तक रूप प्रस्फुटित हो उठता है और वह कर्ण को दान देने से रोकता है। अन्त में वह कहता है 'हे अङ्गराज ! आप अवश्य ही ठग लिए गए।' यह वाक्य स्पष्ट ही उसकी मानसिक व्यथा और निर्मल हृदय कर्ण के प्रति अपार सहानुभूति को व्यक्त करता है। सब प्रकार से वह कर्ण की सुख-सुविधा का चिन्तन करते हुए अन्त तक एक सहृदय सारथी-सा बना रहता है।

इन्द्र—इन्द्र के चरित्र की एक क्षणिक पर गहरी झलक हमें इस नाटक में मिलती है। वह अपने पक्ष की (देव, कृष्ण के पक्ष की) विजय किसी भी प्रकार चाहता है और अन्त में उसकी पूर्ति कपट व्यवहार से कर लेता है। इस एक कार्य ने इन्द्र के पूरे जीवन का समग्र चित्र उपस्थित कर दिया है। इन्द्र में स्वार्थसिद्धि और पक्षपात की कितनी दृढ भावना है यह स्पष्ट सिद्ध होती है। वाद में उसका वह रूप भी हमारे सामने आता है जब कि वह अपने कपट व्यवहार के लिए ग्लानि करता है। यही मानवता का तकाजा है। इसी भाव से प्रेरित होकर वह कर्ण के पास देवदूत भेज कर उन्हें 'विमला' नामक शक्ति प्रदान करता है। स्वार्थसाधक इन्द्र का भारतीय परम्परायुक्त रूप यहाँ भी मिलता है।

रचना विधान—रचना विधान की दृष्टि से विचार करने पर इस नाटक में कुछ ऐसे दोष हैं जो एक प्रथितयश नाटककार के लिए खटकते हैं। नाटक प्रारम्भ होते ही कर्ण शल्य से कहता है, 'जहाँ वह अर्जुन है वहीं मेरे रथ को ले चलो।' फिर कुछ देर वाद कर्ण अपने शस्त्रशिक्षा की प्रासंगिक कथा समाप्त कर लेता है तो फिर दोनों रथ पर बैठते हैं[1] और कर्ण कहता है कि अर्जुन के ही समीप मेरे रथ को ले चलो। दोनों के रथ पर बैठने के बाद शायद ब्राह्मण का ओजस्वी स्वर सुनाई पड़ता है। अन्ततोगत्वा वे पुनः उसी

१. शल्यः—बाढम्। (उभौ रथारोहणं नाटयतः।)
कर्णः—शल्यराज ! यत्रासावर्जुनस्तत्रैव चोद्यतां मम रथः।

रथ पर चढ़ते हैं ऐसा रंगमंचीय निर्देश पुनः होता है।[१] यह रंगमंचीय निर्देश की त्रुटि वहुत वड़ी भूल है। अभिनय में यह एक समस्या उपस्थित हो सकती है कि कब कर्ण रथ पर आरूढ़ होता है, कब उतरता है?

संकलनत्रय के निर्वाह में यह नाटक बड़ा ही सफल है। इसमें सारी घटनाएँ एक ही स्थान पर एक ही समय में और सीमित पात्रों के द्वारा तथा एक ही मुख्य ध्येय की ओर उन्मुख दिखाई पड़ती हैं।

कर्णभार को नाट्य-रचना के किस प्रकार में रखा जाय यह एक समस्या-सी है। यह 'व्यायोग' नहीं हो सकता क्योंकि इसमें न तो कोई संघर्ष या युद्ध आदि ही है ओर न वीर रस ही है। इसे उत्सृष्टिकाङ्क नामक एकांकी नाटक माना जा सकता है। दशरूपककार ने इसकी व्याख्या यों की है—

उत्सृष्टिकाङ्के प्रख्यातं वृत्तं बुद्धया प्रपञ्चयेत्।
रसस्तु करुणः स्थायी नेतारः प्राकृता नराः॥
भाणवत्सन्धिवृत्त्यङ्गैर्युक्तः स्त्रीपरिदेवितैः।
वाचा युद्धं विधातव्यं तथा जयपराजयौ॥

(दशरूपक ३ प्रकाश : ७०-७२)

कथानक प्रख्यात ऐतिहासिक प्रबन्धकाव्य महाभारत का है जिसमें कल्पना का भी पर्याप्त योग है। करुणारस की अनुभूति आदि से अन्त तक होती रहती है। इसमें कहीं भी दैवी व्यक्ति नहीं आए हैं। यदि इन्द्र आते भी हैं तो मनुष्य के ही रूप में। इसमें केवल मुख और निर्वहण सन्धियाँ हैं तथा वाग्युद्ध का ही विधान है, केवल युद्ध की पृष्ठभूमि उपस्थित की गयी है। स्त्री-पात्रों की योजना नहीं है और न स्त्रियों का रुदन ही। यद्यपि भास के नाटकों को शास्त्रीय दृष्टि से किसी एक श्रेणी में पूरा का पूरा नहीं बैठाया जा सकता तथापि प्रस्तुत नाटक को हम अंक या उत्सृष्टिकाङ्क के अधिक निकट पाते हैं।

काव्यतत्त्व—भास ने अपने नाटकों में काव्य तत्त्व का अधिक से अधिक विनियोग किया है। करुण रस की अभिव्यक्ति में यद्यपि कोई स्पष्ट प्रयत्न नहीं दिखाई देता है पर समग्र नाटक पढ़ने या देखने के पश्चात् द्रष्टा का

१. कर्णः—शल्यराज! यावद्रथमारोहावः। शल्यः—बाढम्। (रथारोहणं नाटयतः।)
कर्णः—अये शब्द इव श्रूयते।.........

हृदय करुण रस से पूर्ण हो जाता है। सम्पूर्ण वातावरण में करुणा की धुँधली छाया विद्यमान रहती है। डा० पुशलकर ने इन्द्र के ब्राह्मणवेश धारण करने पर प्राकृत के प्रयोग को हास्य का पुट माना है।[1] कर्ण जैसे महारथी योद्धा के लिए दैन्यभाव का ऐसे समय में उद्भव सूर्य का ज्येष्ठ मास में वादल से आच्छन्न होने के समान है—

अत्युग्रदीप्तिविशदः समरेऽग्रगण्यः शौर्ये च सम्प्रति सशोकमुपैति धीमान् ।
प्राप्ते निदाघसमये घनराशिरुद्धः सूर्यः स्वभावरुचिमानिव भाति कर्णः ॥
(कर्णभारम् ४)

कवि ने उक्त वसन्ततिलका में अप्रस्तुतविधान के द्वारा कर्ण की स्थिति की बड़ी सजीव उपमा दी है।

'अयं स कालः क्रमलव्धशोभनो' आदि श्लोक के द्वारा कर्ण की वेबसी और मन की झुंझलाहट स्पष्ट हो जाती है। इतने उदात्त चरित्र को वार-वार वंचित और दुःखित दिखाकर कवि ने करुणा की अजस्र धारा बहा दी है।

शीर्षक—प्रस्तुत एकांकी का नाम 'कर्णभारम्' है। इस शीर्षक पर विचार करते हुए दो शब्द स्पष्ट सामने आते हैं पहला 'कर्ण' और दूसरा 'भारम्'। कर्ण के दो अर्थ—कौरव-सेनापति और कर्णेन्द्रिय। इसी प्रकार भार के अनेक अर्थ विद्वानों ने किए हैं।

डा० जी० के० भट्ट के अनुसार कर्ण की मानसिक चिंता भी भारस्वरूप होकर उन्हें कष्ट दे रही है। इसी विषयवस्तु को दृष्टिपथ में रखते हुए इस नाटक का उक्त शीर्षक रखा गया है। वास्तव में 'भार' शब्द वड़ा व्यापक एवं अनेकार्थी है और इसी कारण आलोचक को इस नाटक पर कई दृष्टिकोणों से विचार करने पर विवश होना पड़ता है। 'भार' का सामान्य अर्थ 'वोझ' किसी प्रकार छोड़ा नहीं जा सकता। कर्ण के लिए सवसे वडा भार उनका उत्तरदायित्व है जिसे कर्ण अनेक वाधाओं के साथ वोझ की तरह वहन करता है।

स्वयं भीष्मपितामह ने जब कौरवीय सेना के सञ्चालन का महान्

---

1. The whole atmosphere is serene and serious, relieved to some extent by a high class character (Indra in the disguise of a begging Brahman) speaking Prakrit and his peculiar mannerisms, which supply some sort of humour (Hasya). (Bhasa : A study, page 190)

उत्तरदायित्व महाभारत के युद्ध के आदि में ग्रहण किया तो स्वयं कहा था, 'समुद्यतोऽयं भारो मे सुमहान् सागरोपमः (उद्योग, १६८।३०)।' इसी आधार पर म० म० गणपति शास्त्री ने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा कि इसमें कर्ण का सेनापति का रूप निखर नहीं सका है। यदि एक अंक और बढ़ा दिया जाता तो कर्ण का चरित्र पूर्ण हो जाता और उसके गम्भीर उत्तरदायित्व की झलक भी स्पष्ट हो जाती। जहाँ तक साहित्यिक सौन्दर्य और विषयवस्तु के सम्यक् निर्वाह का प्रश्न है प्रस्तुत नाटक अपने में पूर्ण है। उसमें किसी प्रकार की प्रभावमयता या सोद्देश्यता की त्रुटि नहीं दिखाई देती अतएव एक अंक और बढ़ने वाली बात जमती नहीं। जिस धैर्य और अपूर्व साहस के साथ कर्णने अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए भी अपने लक्ष्य की पूर्ति का प्रयत्न किया है इससे उसके भावी सैन्य-सञ्चालन की सफल अभिव्यञ्जना हो जाती है।

डा० पुशलकर ने भी नाटक को अपने में पूर्ण मानते हुए उसके शीर्षक की यों व्याख्या की है—'कानों के लिए भारस्वरूप हुए कुण्डलों को देखकर कर्ण के द्वारा अद्भुत दानशूरता प्रकट की गई है। उसी को केन्द्र बिन्दु मानकर यह नाटक लिखा गया है।'[1] अपने कथन की पुष्टि में उन्होंने लिखा है कि वाचिक दान और वास्तविक (क्रियात्मक) दान के बीच जो समय बीता उसमें कर्ण को वे कुण्डल कानों को भारवत् प्रतीत हुए।[2] उन्होंने इसी मत की व्याख्या करते हुए आगे लिखा है कि कर्ण की निःस्वार्थता, उदारहृदयता और उच्चाशयता इतनी ऊँचाई तक उठी कि जिस क्षण उसने अपने मुख से कुण्डलों को दान देने का वचन दिया उसी क्षण से वे कुण्डल दूसरे के प्रतीत होने लगे और कर्ण के लिए भारस्वरूप हो गए।

प्रो० सी० आर० देवधर ने इस व्याख्या को अधूरी माना है। उनका

१. कर्णयोः भारभूतानि कुण्डलानि दत्त्वा कर्णेनापूर्वा दानशूरता प्रकटीकृता। तामधिकृत्य कृतं नाटकम्। Pusalkar-Bhasa : A Study, Page 188.

२. During the interval of time that elapsed between the varbal gift of the kundalas and their actul delivery, those kundalas were felt as if a burden (bhar) to the ears (karna) by karna. —वही पृष्ठ १८८।

३ क० भा० भू०

कथन है कि यह व्याख्या विषयवस्तु का पूरा उद्घाटन नहीं करती क्यों कि इसमें कहीं कवचों का उल्लेख नहीं है। कर्ण की रक्षा के लिए कुण्डलों की अपेक्षा कवच का महत्व स्पष्ट स्वीकार किया जा सकता है। डा० मैक्स लिण्डेन्यू ने 'भार' का अनुवाद करते हुए उसका अर्थ कवच किया है। एक महोदय ने तो इस नाटक का पर्याय 'कवचांक' दिया है। कर्णभार के अतिरिक्त 'भार' का अर्थ ऐसा (कवच) नहीं ग्रहण किया गया है। डा० विंटरनित्ज ने 'कर्णभार' की व्याख्या में कर्ण के कठिन कार्य का ही संकेत किया है। जैसे कर्ण का यह वचन-निर्वाह कि वह ब्राह्मण को किसी भी वस्तु के लिए कोरा जवाब नहीं देंगे।[1]

प्रो० जी० सी० झाला ने अपने निबन्ध में यह स्पष्ट कर दिया है कि पञ्चरात्र का 'कर्णः' और 'भारार्थम्' शब्द बड़े महत्वपूर्ण हैं (यदि द्रोणाचार्य के द्वारा यह वाक्य कहलाया जाता तो) तथापि यह केवल सामान्य उक्ति नहीं है अपितु जैसे कवि ने 'कर्णभार' की व्याख्या प्रसंग प्राप्त कर स्वयं ही करके दी है। प्रो० झाला का अनुमान है कि संभवतः 'पञ्चरात्र' की रचना के समय उन्हें 'कर्णभार' के अनेकार्थ का पूरा ध्यान रहा हो। जैसे 'कर्णभारम्' में कर्ण युद्ध के लिए प्रस्थान कर रहे हैं ऐसे ही पञ्चरात्र में भी। पञ्चरात्र में वे रथ को मँगाते हैं जब कि कर्णभार में स्वयं रथ के समीप जाते हैं। इस प्रकार 'कर्णभारम्' शीर्षक यह स्पष्ट करता है कि कवि का इससे 'कर्ण का प्रस्थान' द्योतित करना ही अभीष्ट है। अब शंका उठती है कि यह प्रस्थान किसलिए हो रहा है। श्री उलनर महोदय का कथन है कि प्रस्तुत एकांकी दुःखान्त है और इसका ध्येय कर्ण का दुःखान्त (Karna's tragedy) भी हो सकता है या कर्ण का मृत्यु के निकट प्रस्थान भी। इसकी निवृत्ति कर्ण के तीन-तीन बार (शल्य से) रथ को प्रेरित करने के लिए कहने से हो जाती है। स्पष्ट है कि कर्ण प्रतिपल मृत्यु (अर्जुन) के सम्मुख या समीप जाने को उद्यत है।

---

१. He (Dr. Winternitz) interprets the title 'Karna-bhara' as 'the difficult task of Karna' viz. his vow that he would not refuse any thing to a Brahmin. (श्रीदेवधर संपादित कर्णभार की भूमिका पृ० ३)

कर्णभारस्य कथावस्तु

महाकविभासविरचितेऽस्मिन्कर्णभारनामके नाटके कर्णं प्रत्याहववार्तां नयन् दूतः स्पष्टतया वदत्येवं यदासन्नो युद्धावसरः। स्वयमेव साङ्ग्रामिकेण परिच्छदेन सज्जितमायान्तं कर्णमवलोक्य तद्वृत्तनिवेदनमकिञ्चित्करमिति मत्वा न निवेदयति। किन्तु चिन्तितं कर्णं प्रत्यक्षीकृत्य दूतस्य चिन्ता जागर्ति। कर्णस्यापि स्वीयामिमामसम्भावितमनोदशां विचार्य महान्पश्चात्तापो भवति। अनन्तरं नैजं भारं लघूकर्तुं सर्वं पुरातनं, परशुरामेण ब्राह्मणेन च दत्तं शापवृत्तं महाराजशल्यं प्रति कथयति। कथञ्च मात्रा कुन्त्या सह वचनबद्ध आसीदिति च प्रावोचयत्। एतादृशेऽन्धतमसे निराशायाञ्च कर्णो यशःस्वर्णरेखां पश्यति, यया विश्वस्तः सन् स जयपराजययोः सरूपतां गृह्णाति। अस्ति कर्णो वस्तुतो महान् योद्धा। तस्य च सेनापतेरुत्तरदायित्वनिर्वहणे महती चेष्टा वर्तते। अतो मुहुर्मुहुः शल्यराजं प्रेरयति यन्मदीयं रथं तत्रैव नय यत्रार्जुनो वर्तते। मध्येमार्गं याचकविप्रवेषं धृत्वा इन्द्रः सम्प्राप्तो भवति। याचको हि राधेयाद्दानीयवस्तुमध्ये गां गजं भूमिमन्यदपि न किञ्चिदपीच्छति ग्रहीतुमवसाने च कर्णस्याभेद्यं कवचं कुण्डलं च जन्मजातं गृहीत्वैव तुष्यति। कर्णोऽपि विप्रच्छद्मवेशिनो याचकस्यास्वाभाविकैरसामान्यैश्च व्यापारैरित्थमवश्यमवगतः यदयमपि कृष्णस्य कश्चित्कार्यसाधकश्चर एव। किन्तु दानं प्रदाय पुनस्तद्धरणं न्यायविरुद्धमिति विचार्य महाराजशल्येन दानाऽवरोधे कृतेऽपि नैजे कवचकुण्डले इन्द्राय प्रददाति। पश्चाच्च इन्द्रेण दैवी शक्तिर्देवदूतद्वारा कर्णाय प्रेषिता ताञ्च पूर्वं कर्णो न स्वीकरोति। किन्तु पश्चाद् ब्राह्मणोऽयं ददाति—एवं बुद्ध्वा शिरसा दधाति यतो विप्रवचनोल्लङ्घनं कदापि न कृतं तेन। इत्थं सः सेनानी कर्णः स्वकर्तव्यपथे भूयसीर्बाधा अधीयन् विपदश्चानुभवन्नपि युद्धार्थं पुरोयायी भवति। स भूयोभूयः शल्यमादिशति यत्रासौ अर्जुनो वर्तते तत्रैव मदीयं रथं नयेति। अन्ते च शास्त्रीयभरतवाक्यानन्तरं नाटकं सम्पूर्णतां याति।

पात्राणि

कर्णः—अङ्गेश्वरः कौरवसेनापतिः ।

शल्यः—शल्यराजः कर्णसूतः ।

भटः—सूचकः ।

शक्रः—ब्राह्मणरूपधारीन्द्रः ।

देवदूतः—इन्द्रसन्देशवाहकः ।

—❀—

श्लोकानुक्रमणिका

भासनाटकचक्रे

कर्णभारम्

'प्रकाश'-संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

——: ० :——

प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः ।)

सूत्रधारः—

नरमृगपतिवर्ष्मालोकनभ्रान्तनारी-
नरदनुजसुपर्वव्रातपाताललोकः ।

अथ तत्रभवान् कविचक्रचूडामणिः कालिदासादिभिरतिश्लाघितगुणगणः भासः 'कर्णभारम्' नामकं नाटकं चिकीर्षुः विघ्नविघाताय सूत्रधारेण कृतं मङ्गलाचरणं सूचयन् तस्य प्रवेशं निर्दिशन्नाह—नरमृगपतीति ।

नरमृगपतिवर्ष्मालोकनभ्रान्तः--नरस्य = मनुष्यस्य मृगपतेः = सिंहस्य च वर्ष्म = विग्रहः (शरीरं वर्ष्म विग्रहः--अमरः)। तस्य आलोकनेन = प्रेक्षणेन भ्रान्ताः = भ्रान्तिमन्तः कृताः नारीणाम् = अङ्गनानां नराणां = मानवानां दनुजानां = दानवानां सुपर्वणां = सुमनसां (सुपर्वाणस्सुमनसो गीर्वाणा दानवारयः-अमरः) व्राताः = संघाताः (निकरव्रातसंघातसंचयाः–अमरः) पाताललोकश्च

(नान्दी-पाठ के बाद सूत्रधार आता है ।)

सूत्रधार—जिस (विष्णु) के नृसिंह विग्रह को देखकर नर, नारी, राक्षस, देवगण और पाताललोक आश्चर्य में पड़ गया और जिन्होंने अपने वज्र के समान

करजकुलिशपालीभिन्नदैत्येन्द्रवक्षाः
सुररिपुबलहन्ता श्रीधरोऽस्तुश्रिये वः ॥ १ ॥

एवमार्यमिश्रान्विज्ञापयामि । (परिक्रम्य, कर्णं दत्त्वा ।) अये किं नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते । अङ्ग ! पश्यामि ।

(नेपथ्ये)

भो भो ! निवेद्यतां निवेद्यतां महाराजायाङ्गेश्वराय ।

सूत्रधारः—भवतु विज्ञातम् ।

येन सः । करजकुलिशपालीभिन्नदैत्येन्द्रवक्षाः—करे जातः करजः = नखः स एव कुलिशं = वज्रं तस्य पाल्या = कोट्या (कोणस्तु स्त्रियः पाल्यश्रिकोटयः–अमरः) भिन्नं = विदीर्णं दैत्येन्द्रस्य = हिरण्यकशिपोः वक्षः = उरःस्थलम् येन सः (उरो वत्सञ्च वक्षश्च—अमरः) सुररिपुबलहन्ता—सुराणां = देवानां रिपवः = दैत्याः, तेषां बलं हन्तीति = दनुजबलविनाशकः भगवान् नृसिंहः श्रीधरः—धरतीति धरः श्रियः धरः = इन्दिरापतिः, वः युष्माकं श्रिये = कल्याणाय अस्तु = भवतु । पूर्वोक्तगुणगणविशिष्टः लक्ष्मीपतिः भवतां श्रोतॄणां दर्शकानां च कल्याणं कुर्यादिति भावः । मालिनी वृत्तम् यथा—ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैरिति । पर्यायोक्तिरलङ्कारः ॥ १ ॥

एवमार्यमिश्रान्विज्ञापयामि–आर्याः कुलशीलदयाधर्मसत्यादिसद्गुणसम्पन्नाः सभ्याः ते च ते मिश्राः = पूज्यास्तान् श्रेष्ठसामाजिकान् विज्ञापयामि = निवेदयामि । अङ्गेश्वराय = अङ्गानां = देशविशेषाणाम् ईश्वरः = अधिपतिः तस्मै कर्णाय ।

कठोर नख के अग्रभाग से दैत्यराज (हिरण्यकशिपु) का हृदय विदीर्ण किया ऐसे दानवों की सेना को परास्त करनेवाले विष्णु भगवान् आप लोगों का कल्याण करें ॥ १ ॥

इस प्रकार मैं आप महानुभावों को सूचित करता हूँ । (घूमकर, कान देकर) अरे मुझ सूचना देने में व्यग्र (सूत्रधार) को यह कैसा शब्द-सा सुनाई पड़ता है । अच्छा ! देखता हूँ ।

(नेपथ्य में)

हे हे ! निवेदन करो, निवेदन करो महाराज अङ्गदेशाधिपति (कर्ण) से ।

सूत्रधार—अच्छा, समझा ।

संग्रामे तुमुले जाते कर्णाय कलिताञ्जलिः ।
निवेदयति संभ्रान्तो भृत्यो दुर्योधनाज्ञया ॥ २ ॥

(निष्क्रान्तः ।)

प्रस्तावना ।

(ततः प्रविशति भटः ।)

भटः—भो भो ! निवेद्यतां निवेद्यतां महाराजायाङ्गेश्वराय युद्धकाल उपस्थित इति ।

करितुरगरथस्थैः पार्थकेतोः पुरस्तात्

सूत्रधारः सामाजिकान् प्रति पूर्वरङ्गं स्थापयन्नाह—संग्राम इति ।

संग्रामे = आहवे तुमुले = भयङ्करे जाते = भूते सम्भ्रान्तः = व्याकुलः भृत्यः = राजसेवकः दुर्योधनाज्ञया—दुर्योधनस्य = धार्तराष्ट्रश्रेष्ठस्य आज्ञया = आदेशेन कलिताञ्जलिः—कलितः = विहितः अञ्जलिः = करसम्पुटो येन सः = करं बद्ध्वा निवेदयति = विज्ञापयति । इदानीं भयङ्करः संग्रामोऽभूदिति सूचयति । अनुष्टुप् छन्दः ।

प्रस्तावना—आमुखं स्थापना चेति । अयं प्रयोगातिशयो नाम प्रस्तावनाभेदः । उक्तं साहित्यदर्पणे—

यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयोज्यते ।
तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तदा ॥ इति ।

पार्थकेतोः—पृथायाः पुत्रः तस्य केतुः तस्य = अर्जुनध्वजस्य पुरस्ताद् =

दुर्योधन की आज्ञा से कर्ण को घबड़ाया हुआ हाथ जोड़े हुये परिचारक भयङ्कर युद्ध होने की सूचना दे रहा है ॥ २ ॥

(सब चले जाते हैं)

प्रस्तावना समाप्त ॥

(भट प्रवेश करता है)

भट—हे हे ! निवेदन करो, निवेदन करो महाराज अङ्गेश्वर (कर्ण) को कि युद्धकाल उपस्थित हो गया है ।

आज अर्जुन के ध्वज के सम्मुख सिंह के समान राजागण; जो हाथी, घोड़े

मुदितनृपतिसिंहैः सिंहनादः कृतोऽद्य।
त्वरितमरिनिनादैर्दुस्सहालोकवीरः
समरमधिगतार्थः प्रस्थितो नागकेतुः ॥ ३ ॥

(परिक्रम्य विलोक्य) अये अयमङ्गराजः समरपरिच्छदपरिवृतः शल्यराजेन सह स्वभवनान्निष्क्रम्येत एवाभिवर्तते। भोः किं नु खलु युद्धोत्सवप्रमुखस्य दृष्टपराक्रमस्याभूतपूर्वो हृदयपरितापः।

अग्रे करितुरगरथस्थैः—करिणां तुरगाणां रथानां तेषु तिष्ठन्तीति तैः = नागाश्वस्यन्दनस्थितैः मुदितनृपतिसिंहैः—मुदिताः = प्रसन्नाः नृपतयः = राजानः ते एव सिंहाः तैः प्रमुदितभूपमृगेन्द्रैः अद्य आहवे सिंहनादः = सिंहानां नाद इव नादः यथा स्यात् तथा = शार्दूलगर्जनम् अरिनिनादैः—निनदन्तीति निनादाः अरीणां निनादास्तैः: = शत्रुकोलाहलैः कृतः = विहितः। अतः दुःसहालोकवीरः—दुस्सहः सोढुमशक्यः आलोकः तेजोविशेषो यस्य एतादृशश्चासौ वीरश्च = अनभिभूतपराक्रमयोद्धा। अधिगतार्थः—अधिगतः = ज्ञातः अर्थः येन सः = ज्ञातप्रयोजनः नागकेतुः—नागः मणिमयो हस्ती केतौ = ध्वजे यस्य = हस्तिचिह्नध्वजः दुर्योधनः त्वरितं = द्रुतं (त्वरितं चपलं द्रुतमित्यमरः) समरं = युद्धभूमिं प्रस्थितः = प्रस्थानं कृतवान्। मालिनी वृत्तम् ॥ ३ ॥

समरपरिच्छदपरिवृतः—समरस्य = समराङ्गणस्य परिच्छदेन = नेपथ्येन (वेशभूषया) परिवृतः = युक्तः, कर्णः। युद्धोत्सवप्रमुखस्य—युद्धस्य = समरस्य उत्सवः = समारोहः तस्मिन् प्रमुखः—मुखं प्रगतः = अग्रगण्यः तस्य। दृष्टपराक्रमस्य—दृष्टः = अवलोकितः पराक्रमः = वीरता यस्य तस्य। अभूतपूर्वः = नूतनः हृदयस्य = हार्दिकः परितापः = चिन्ता। इदानीं भटः कर्णं विशिनष्टि—अत्युग्रेति।

रथोंपर सवार हैं सिंहनाद (जयनाद) कर रहे हैं और अपराजेय शक्तिवाले नागकेतु, (हाथी का चिह्न वाली ध्वजा है जिसकी) दुर्योधन ने युद्ध के लिए आह्वान सुनकर तुरन्त प्रस्थान किया ॥ ३ ॥

(घूमकर, देखकर) अरे, यह अङ्गराज (कर्ण) युद्धवेष को धारण करके शल्यराज (सारथि) के साथ अपने भवन से निकलकर उसी ओर (युद्धस्थल की ओर) जा रहे हैं। हे ! युद्धरूपी उत्सव में सर्वप्रमुख (सेनापति) अत्यन्त पराक्रमी कर्ण का यह अभूतपूर्व मानसिक संताप कैसा ?

एष हि—

अत्युग्रदीप्तिविशदः समरेऽग्रगण्यः
शौर्ये च संप्रति सशोकमुपैति धीमान् ।
प्राप्ते निदाघसमये घनराशिरुद्धः
सूर्यः स्वभावरुचिमानिव भाति कर्णः ॥ ४ ॥

यावदपसर्पामि । (निष्क्रान्तः ।)

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टः कर्णः शल्यश्च ।)

अत्युग्रदीप्तिविशदः—अत्युग्रा चासौ दीप्तिः तया विशदः = प्रतापातिशयप्रद्योतितः समरे = आयोधने शौर्ये—शूरस्य भावः (गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः ष्यञ् इति ष्यञ्) तस्मिन् पराक्रमे च अग्रगण्यः—अग्रे गणितुं—योग्यः = अग्रेसर इत्यर्थः । धीमान्—धीः अस्ति अस्य (धी + मतुप्) = बुद्धिमान् कर्णः सम्प्रति = सशोकं—शोकेन सहितं = विषादयुक्तम्—उपैति = प्राप्नोति निदाघसमये—निदाघस्य समयः तस्मिन् = ग्रीष्मर्तौ घनराशिरुद्धः—घनानां = मेघानां राशयः = समूहाः तैः रुद्धः = आच्छादितः स्वभावरुचिमान्—स्वस्य भावः तस्य रुचिः अस्ति अस्य = सहजकान्तिमान् सूर्यः—दिवाकरः इव कर्णः = राधेयः भाति = शोभते । आतपर्तौ मेघाच्छन्नः सूर्यः यथा द्योतते तथैवेदानीं कर्णः प्रतिभाति इति भावः । 'ज्ञेया वसन्ततिलका तभजा जगौ गः' इत्यत्र वसन्ततिलका वृत्तम् । वृत्यनुप्रासः । तथा विशेषस्य सामान्येन पुष्टिर्भवति अतः अत्र अर्थान्तरन्यासालङ्कारः ॥ ४ ॥

यहां यह—

अत्यन्त प्रखर पराक्रम से युक्त युद्धस्थल में सर्वप्रमुख (योद्धा) बलशाली कर्ण बुद्धिमान् होकर भी इस समय शोक से परितप्त हो रहे हैं । ग्रीष्मऋतु में स्वाभाविक प्रखर किरणों वाला सूर्य जैसे मेघमाला से आच्छादित हो जाय वैसे ही इस समय कर्ण (शोक से संविग्नमन होकर) लगते हैं ॥४॥

अच्छा तो जाता हूँ (जाता है।)

(तब पूर्वनिर्दिष्ट कर्ण और शल्य प्रवेश करते हैं।)

कर्णः--

मा तावन्मम शरमार्गलक्ष्यभूताः
संप्राप्ताः क्षितिपतयः सजीवशेषाः ।
कर्तव्यं रणशिरसि प्रियं कुरूणां
द्रष्टव्यो यदि स भवेद्धनञ्जयो मे ॥ ५ ॥

शल्यराज ! यत्रासावर्जुनस्तत्रैव चोद्यतां मम रथः ।

शल्यः--बाढम् । (चोदयति ।)

कर्णः—अहो नु खलु

सम्प्रति कर्णः हृद्गतं स्वाभिप्रायं सूचयति—मा तावदिति ।

तावत् = आदौ मम = कर्णस्य शरमार्गलक्ष्यभूताः--शराणां = विशिखानां मार्गेषु—पदवीषु (अयनं वर्त्म मार्गाध्वपन्थानः पदवी सृतिः—अमरः ।) लक्ष्यभूताः = लक्ष्यत्वेन स्थिताः क्षितिपतयः--क्षितीनां = भूमीनां पतयः = स्वामिनः = नरेन्द्राः सजीवशेषाः--जीवेन सहिताः तैः शेषाः जीवनयुक्ताः सम्प्राप्ताः = उपस्थिताः । ते मा आयान्तु मम सम्मुख इति शेषः। सम्प्रति रणशिरसि--रणस्य शिरः तस्मिन् = संग्राममूर्द्धनि कुरूणां--कुरुवंशीयानां = दुर्योधनादीनामित्यर्थः । प्रियम् = अभिलषितं कर्तव्यं--विधातव्यं वर्तते यदि चेत् स धनञ्जयः—धन-नामानम् अग्निं जयतीति = विभावसुविजेता अर्जुनः मद्विद्वेष्टा मे = मम कर्णस्य द्रष्टव्यः = चक्षुर्गोचरीभूतः स्यात् तदा तं विजित्य अवश्यं कौरवाभिलाषं पूरयिष्यामि इति भावः । 'म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्' इत्यत्र प्रहर्षिणी वृत्तम् । ओजो गुणः ॥ ५ ॥

कर्ण---नहीं, ऐसा कभी नहीं हुआ है कि मेरे शरसंधान के लक्ष्य बन कर राजे-महाराजे जीवित बच जांय । मैं कौरवों का अभीष्ट पूर्ण कर दूँ यदि (मैं) युद्ध क्षेत्र में अर्जुन को पा जाऊं ॥ ५ ॥

ओ शल्यराज (सारथि) ! जहाँ वह अर्जुन है वहीं मेरे रथ को प्रेरित करो (ले चलो) ।

शल्य—बहुत अच्छा । (ले जाता है ।)

कर्ण—अरे, यह कैसे—

अन्योन्यशस्त्रविनिपातनिकृत्तगात्र-
योधाश्ववारणरथेषु महाहवेषु ।
क्रुद्धान्तकप्रतिमविक्रमिणो ममापि
वैधुर्यमापतति चेतसि युद्धकाले ॥ ६ ॥

भोः कष्टम् ।

पूर्वं कुन्त्यां समुत्पन्नो राधेय इति विश्रुतः ।
युधिष्ठिरादयस्ते मे यवीयांसस्तु पाण्डवाः ॥ ७ ॥

पुरा कदाचिदपि आहवे अनुभूतभावो हृदये प्रादुर्भवतीति शल्यं सूचयति—अन्योन्येति ।

अन्योन्यं = मिथः शस्त्राणाम् = आयुधानां विनिपातैः = प्रहारैः निकृत्तगात्राः = कर्तितविग्रहाः योधाः = सैनिकाः अश्वाः = तुरगाः वारणाः = करिणः रथाः = स्यन्दनाश्च येषु तेषु । महाहवेषु—महान्तश्च ते आहवाः तेषु = महायुद्धेषु युद्धकाले—युद्धस्य कालः तस्मिन् = रणसमये क्रुद्धान्तकप्रतिमविक्रमिणः—क्रुद्धः = कुपितः अन्तकः = यमः तस्य प्रतिमा इव प्रतिमा यस्य एतादृशः यः विक्रमः सः अस्य अस्तीति (अत इनिठनौ इति इनि प्रत्ययः ।) तस्य = कुपितयमसदृशपराक्रमस्य ममापि = कर्णस्यापि चेतसि = मनसि वैधुर्यं—विधुरस्य भावः = दीनता आपतति = आगच्छति तन्न युक्तमिति भावः । उपमालङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् । ओजोगुणः ॥ ६ ॥

कर्णः स्वहृदयवैधुर्यकारणं निरूपयन्नाह—पूर्वं कुन्त्यामिति ।

पूर्वं = प्रथमं कुन्त्यां = पाण्डुपत्न्यां समुत्पन्नः = उत्पन्नः अहं राधेयः-राधाया अपत्यं पुमान् राधेयः (स्त्रीभ्यो ढक् इति ढकि) इति = इत्थं (लोके) विश्रुतः = प्रसिद्धः अतः ते युधिष्ठिरादयः = युधिष्ठिर आदिर्येषां ते = युधिष्ठिरप्रमुखाः पञ्च

युद्ध का समय उपस्थित होने पर कायरता का भाव मेरे मन में आ रहा है, जिसकी अतुल शक्ति की तुलना क्रुद्ध यमराज से हो सकती है और जो युद्धस्थल में दोनों तरफ शस्त्र-प्रहार के द्वारा अनेक योद्धाओं, घोड़ों, रथों और हाथियों के टुकड़े-टुकड़े कर डालता था ॥ ६ ॥

अरे, महान् कष्ट है ।

पहले कुन्ती से उत्पन्न होकर राधा के पुत्र के नाम से संसार में प्रसिद्ध हुआ (इसलिए) युधिष्ठिर आदि पांचों पाण्डव मेरे छोटे भाई हैं ॥७॥

अयं स कालः क्रमलब्धशोभनो
गुणप्रकर्षो दिवसोऽयमागतः।
निरर्थमस्त्रं च मया हि शिक्षितं
पुनश्च मातुर्वचनेन वारितः ॥ ८ ॥

भोः शल्यराज, श्रूयतां ममास्त्रस्य वृत्तान्तः।

शल्यः—ममाप्यस्ति कौतूहलमेनं वृत्तान्तं श्रोतुम्।

कर्णः—पूर्वमेवाहं जामदग्न्यस्य सकाशं गतवानस्मि।

शल्यः—ततस्ततः

पाण्डवाः-पाण्डौ जाताः (तत्र जात इति अणि) = पाण्डुपुत्राः मे = मम (कर्णस्य) यवीयांसः = कनिष्ठाः (अतः अनुजाः पुत्रसमाः ख्याता इति) जानन्नपि कथं तेषां हननं मद्विधानाम् युक्तमिति भावः। अत्र दैन्यं संचारी भावः। अनुष्टुप् श्लोकः ॥ ७ ॥

अयमिति। गुणप्रकर्षः—गुणेन = प्रतीक्ष्येण गुणेन प्रकर्षः = उत्कृष्टः क्रमलब्धशोभनः— क्रमेण = दिनक्रमेण लब्धः = प्राप्तः शोभनः सुन्दरः स कालः = समयः अयं = प्रवर्तमानः दिवसः = वासरः (वा क्लीबे दिवसवासरौ—अमरः) आगतः = सम्प्राप्तः हि = यतः मया = कर्णेन शिक्षितम् = अभ्यस्तम् अस्त्रम् = आग्नेयादिविशिष्टायुधं निरर्थम्-अर्थेभ्यः निष्क्रान्तम् अनर्थकं व्यर्थमिति भावः। पुनश्च मातुः = जनन्याः कुन्त्याः वचनेन = वचसा च वारितः = निषिद्धः। त्वया युधिष्ठिरादिषु इमान्यस्त्राणि न कदाचिदपि प्रक्षेपणीयानि। वंशस्थवृत्तम्, यथा 'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ' इति ॥ ८ ॥

यह समय अत्यन्त उपयुक्त और अनेक दिनों से प्रतीक्षित दिन आ गया किंतु मेरी अस्त्र-शिक्षा इस समय व्यर्थ सिद्ध होती है और माता ने मुझ मना भी किया है (कि युधिष्ठिरादि अपने छोटे भाइयों पर अस्त्र न चलाना) ॥ ८ ॥

हे शल्यराज, सुनो मेरे अस्त्रों की कथा।

शल्य—इस वृत्तान्त सुनने का मुझे भी बड़ा कौतूहल है।

कर्ण—पहले जामदग्न्य (परशुराम) के पास गया था।

शल्य—तब फिर।

कर्णः—ततः

विद्युल्लताकपिलतुङ्गजटाकलाप-
मुद्यत्प्रभावलयिनं परशुं दधानम् ।
क्षत्रान्तकं मुनिवरं भृगुवंशकेतुं
गत्वा प्रणम्य निकटे निभृतः स्थितोऽस्मि ॥ ९ ॥

शल्यः—ततस्ततः ।

कर्णः—ततो जामदग्न्येन ममाशीर्वचनं दत्त्वा पृष्टोऽस्मि । को भवान् किमर्थमिहागत इति ।

राधेयः स्वस्मिन् दिव्यानाम् आयुधानां समागमनवृत्तान्तं स्मारयति शल्यं प्रति विद्युल्लतेति ।

(अहं कर्णः) विद्युल्लताकपिलतुङ्गजटाकलापं—विद्युच्चासौ लता = तडित् (तडित् सौदामिनी–विद्युत् अमरः) इव कपिलः = पिङ्गलवर्णः तुङ्गः = महान् जटायाः कलापः जटाकलापः यस्य तम् उद्यत्प्रभावलयिनं–उद्यन्ती चासौ प्रभा तस्या वलयम् अस्ति यस्य (अत इनिठनौ) तम् = प्रद्योतितच्छविपरिधिमन्तं परशुम् = आयुधविशेषं दधानं = धारयन्तं क्षत्रान्तकं–क्षत्राणामन्तकः तम् = क्षत्रिय–जातिनाशकं भृगुवंशकेतुं-भृगोर्वंशः तस्य केतुः तम् = भार्गवान्वय-श्रेष्ठं मुनिवरं–मुनिषु वरं = तपस्विमहत्तमं पशुरामं निकटे = समीपे गत्वा = उपसृत्य प्रणम्य च निभृतः = मौनमवलम्ब्य स्थितः = उपविष्टः = अस्मि = भवामि । अत्र वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ९ ॥

कर्णः—तब,

विद्युत् की लता के समान पीली और लम्बी जटा के समूह एवं प्रभा की परिधि से घिरे हुए परशु को धारण करनेवाले मुनियों में श्रेष्ठ, भृगुवंश के ध्वज और क्षत्रियों के विनाशक (परशुराम) के निकट जाकर (मैं उन्हें) प्रणाम करके चुपचाप एक तरफ़ खड़ा हो गया ॥ ९ ॥

शल्यः—तब फिर ।

कर्णः—तब परशुराम ने आशीर्वाद देकर (मुझसे) पूछा 'आप कौन हैं ? क्यों यहां आये हैं ?

शल्यः—ततस्ततः ।

कर्णः—ततः भगवन् अखिलान्यस्त्राण्युपशिक्षितुमिच्छामीत्युक्तवानस्मि ।

शल्यः—ततस्ततः ।

कर्णः—तत उक्तोऽहं भगवता ब्राह्मणेभ्य उपदेशं करिष्यामि न क्षत्रियाणामिति ।

शल्यः—अस्ति खलु भगवतः क्षत्रियवंश्यैः पूर्ववैरम् । ततस्ततः ।

कर्णः—ततो नाहं क्षत्रिय इत्यस्त्रोपदेशं ग्रहीतुमारब्धं मया ।

शल्यः—ततस्ततः ।

कर्णः—ततः कतिपयकालातिक्रमे कदाचित्फलमूलसमित्कुशकुसुमाहरणाय गतवता गुरुणा सहानुगतोऽस्मि ।

शल्यः—ततस्ततः ।

कर्णः—ततः स गुरुर्वनभ्रमणपरिश्रमान्मदङ्के निद्रावशमुपगतः ।

शल्यः—ततस्ततः ।

शल्यः—तब फिर ।

कर्णः—तब भगवान् (मैं) समस्त अस्त्र-विद्या सीखना चाहता हूँ । ऐसा मैंने कहा ।

शल्यः—तब फिर ।

कर्णः—तब भगवान् ने मुझसे कहा कि मैं केवल ब्राह्मणों को ही (अस्त्र-विद्याका) उपदेश देता हूँ, क्षत्रियों को नहीं ।

शल्यः—भगवान् को तो क्षत्रिय वंश से पुराना वैर है । तब फिर ।

कर्ण.—तब मैं क्षत्रिय नहीं हूँ (ऐसा कहकर) अस्त्रका उपदेश लेना प्रारम्भ कर दिया ।

शल्यः—तब फिर ।

कर्णः—तब कुछ समय बीतने पर एकबार फल, मूल, समिधा, कुश, कुसुम लाने के लिए जाते हुए गुरु के साथ मैं भी (जंगल को) गया था ।

शल्यः—तब फिर ।

कर्णः—तब गुरुजी वन में भ्रमण करने के परिश्रम से (थककर) मेरी गोद में ही सो गए ।

शल्यः—तब फिर ।

कर्णः—ततः

कृत्ते वज्रमुखेन नाम कृमिणा दैवान्ममोरुद्वय
निद्राच्छेदभयादसह्यत गुरोर्धैर्यात्तदा वेदना।
उत्थाय क्षतजाप्लुतः स सहसा रोषानलोद्दीपितो
बुद्ध्वा मां च शशाप कालविफलान्यस्त्राणि ते सन्त्विति ॥१०॥

शल्यः—अहो कष्टमभिहितं तत्रभवता।

कर्णः—परीक्षामहे तावदस्त्रस्य वृत्तान्तम्। (तथा कृत्वा) एतान्यस्त्राणि

पूर्वं निरर्थम् अस्त्रं मया शिक्षितमिति यदुक्तं तदेव कर्णः स्पष्टयति—कृत्त इति। दैवात् = (मम) दुर्भाग्यवशात् वज्रमुखेन—वज्रवत् मुखं यस्य तेन एतन्नामकेन कृमिणा = कीटेन मम = मे (कर्णस्य) ऊरुद्वये कृत्ते = दंष्ट्रे सति तदा = तस्मिन् समये गुरोः = शिक्षकस्य (परशुरामस्य) निद्राच्छेदः–निद्रायाः = शयनस्य छेदः = भङ्गः तस्य भयं तस्मात् = शयनभङ्गभीतेः धैर्यात् = क्षत्रियत्व-दाढर्येन तद् वेदना असह्यत = सोढा। क्षतजाप्लुतः—क्षताज्जातं तेन आप्लुतः = रुधिराप्लुतः स महर्षिः परशुरामः उत्थाय = निद्रामुन्मुच्य सहसा = झटिति (द्राक्) रोषानलोद्दीपितः—रोष एव अनलः अग्निः तेनोद्दीपितः = क्रोधवह्नि-वर्धितः माम् (कर्णम्) बुद्ध्वा = क्षत्रियोऽयमिति ज्ञात्वा ते = तव (कर्णस्य) अस्त्राणि = आयुधानि यानि मया (परशुरामेण) शिक्षितानि तानि कालविफलानि काले = प्रयोगसमये विफलानि = फलरहितानि विस्मृतानि सन्तु = भवन्तु इति = एवं शशाप = शापं ददौ। अतएव इदानीं तानि विस्मृतानि। अत्र शार्दूलविक्रीडितम् छन्दः ॥ १० ॥

कर्ण—तव,

(मेरे) अभाग्यवश वज्रमुख नामक कीड़े ने मेरे जंघों में काट लिया पर (उसपर) सोए हुए गुरु के निद्राभंग के भय से मैंने उस पीड़ा को धैर्यपूर्वक सह लिया, रक्त से भींगे हुए वे उठकर बैठ गये तथा उनकी क्रोधाग्नि धधक उठी और क्रुद्ध होकर मुझे उन्होंने शाप दिया कि 'युद्धकाल में तुम्हारे अस्त्र विफल हो जाँय ॥ १० ॥

शल्य—अरे, बड़ी कष्टकर बात उन्होंने कही।

कर्ण—तब तो मैं अपने अस्त्रों की कथा की परीक्षा करता हूँ। (वैसा करके)

निर्वीर्याणीव लक्ष्यन्ते । अपि च ।

इमे हि दैन्येन निमीलितेक्षणा
मुहुः स्खलन्तो विवशास्तुरङ्गमाः ।
गजाश्च सप्तच्छददानगन्धिनो
निवेदयन्तीव रणे निवर्तनम् ॥ ११ ॥

शङ्खदुन्दुभयश्च निःशब्दाः ।

शल्यः—भोः कष्टं किं नु खल्विदम् ।

कर्णः—शल्यराज ! अलमलं विषादेन ।

इदानीमन्यानि यानि लक्षणानि दृश्यन्ते तेभ्यः न ममाभीष्टसिद्धिः स्फुरति इति सूचयति—इमे हीति ।

हि = यतः दैन्येन—दीनतायाः भावः दैन्यं (गुणवचनत्वात् ष्यञ) तेन = कातरतया निमीलितेक्षणाः (नि + मिल् सङ्गमे + निष्ठा-क्त-प्रत्यये) निमीलितानि ईक्षणानि येषां ते = सम्पुटित–(निद्रित)–नेत्राः अतएव मुहुः = भूयोभूयः स्खलन्तः = भ्रश्यन्तः विवशाः = विगतं वशं = स्वच्छन्दता येषां ते = पराधीनाः इमे = पुरतो वर्तमानाः तुरङ्गमाः तुरं = शीघ्रं गच्छन्तीति = घोटकाः, सप्तच्छद-दानगन्धिनः—सप्तच्छदस्य इव दानस्य गन्धः स एषां ते = सप्तपर्णगन्ध-मदस्राविणः गजाः = करिणश्च रणे = संग्रामे निवर्त्तनं = परावर्तनं निवेदयन्ति = प्रकटयन्ति एव । अत्र वर्तमानाः तुरगाः करिणश्च रणान्निवर्तनमेव वाञ्छन्तीति भावः । अत्र वंशस्थवृत्तम् ॥ ११ ॥

ये अस्त्र भी निःशक्त से दिखाई पड़ते हैं । और भी,

ये दीनभावापन्न विवश से घोड़े अपनी आँखों को बन्द करके बारम्बार ठोकर खा रहे हैं । सप्तच्छद के समान मदधारा की गन्ध से युक्त ये मस्त गजराज भी (दीन होकर) जैसे रणस्थल से लौट चलने का निवेदन कर रहे हैं ॥ ११ ॥

शङ्ख और दुन्दुभी भी निश्शब्द हो गए हैं ।

शल्य—बड़ा कष्ट है यह सब क्या है ।

कर्ण—शल्यराज ! विषाद करना व्यर्थ है ।

हतोऽपि लभते स्वर्गं जित्वा तु लभते यशः।
उभे बहुमते लोके नास्ति निष्फलता रणे ॥ १२ ॥

अपि च

इमे हि युद्धेष्वनिवर्तिताशा
हयाः सुवर्णेन समानवेगाः।
श्रीमत्सु काम्बोजकुलेषु जाता
रक्षन्तु मां यद्यपि रक्षितव्यम् ॥ १३ ॥

अक्षयोऽस्तु गोब्राह्मणानाम्। अक्षयोऽस्तु पतिव्रतानाम्। अक्षयोऽस्तु

हत इति। रणे = संग्रामे हतोऽपि = पञ्चत्वं गतोऽपि स्वर्गं = स्वर्गलोकं लभते = प्राप्नोति जित्वा = रणं विजित्य तु यशः = कीर्ति लभते = आदत्ते लोके = भुवने (लोकस्तु भुवने जने—इत्यमरः) उभे = स्वर्गयशसी बहुमते = दुर्लभे अतः कदाचिदपि रणे निष्फलता = व्यर्थता नास्ति = न वर्तते ॥१२॥

इमे इति। हि = यतः युद्धेष्वनिवर्तिताशा—युद्धेषु = संग्रामेषु अनिवर्तिता आशा यैस्ते = अत्याजिताभिलाषाः सुपर्णेन = गरुत्मता समानवेगाः—समानो वेगो येषां ते = तुल्यरसाः इमे संग्रामे वर्तमानाः हयाः = अश्वाः श्रीमत्सु—श्रीः अस्ति एषां ते तेषु = लक्ष्मीयुक्तेषु काम्बोजकुलेषु = कम्बोजे जाताः तेषां कुलानि तेषु = कम्बोजदेशोत्पन्नवंशेषु (काबुलीति लोके प्रसिद्धिः) जाताः = प्रादुर्भूताः यद्यपि मया रक्षितुं योग्यं तथापि ते इदानीं माम् (राधेयं) रक्षन्तु = रक्षां कुर्वन्तु अत्र 'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः' तथा 'उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ' इत्यनयोरुपजातिः ॥ १३ ॥

संग्राम में मारे जाने पर स्वर्ग प्राप्त होता है और जीतने पर यश मिलता है, अतः लोक में दोनों ही अधिक मानवीय माने जाते हैं इससे युद्ध करने में निष्फलता नहीं है ॥१२॥

और भी—

युद्ध में अभिलाष रखने वाले, गरुड़ के समान वेगशाली शोभायुक्त काबुली घोड़ों की जाति के ये घोड़े, जिनकी रक्षा मुझेकरनी चाहिये, मेरी रक्षा करें।१५

गो ब्राह्मणों का कल्याण हो। सती स्त्रियों का कल्याण हो। रण में पीठ न

रणेष्वपराङ्मुखानां योधपुरुषाणाम् । अक्षयोऽस्तु मम प्राप्तकालस्य ।
एष भोः प्रसन्नोऽस्मि ।

X समरमुखमसह्यं पाण्डवानां प्रविश्य
प्रथितगुणगणाढ्यं धर्मराजं च बद्ध्वा ।
मम शरवरवेगैरर्जुनं पातयित्वा
वनमिव हतसिंहं सुप्रवेशं करोमि ॥१४॥

गोब्राह्मणानाम्—गावश्च ब्राह्मणाश्च तेषां = धेनुभूदेवानाम् अक्षयोऽस्तु—न क्षयः—क्षतिरहितः कल्याणमिति यावत् अस्तु = भूयात् । पतिव्रतानां = पतिधर्मपरायणानामङ्गनानाम् । रणेष्वपराङ्मुखानां—रणेषु = संग्रामेषु अपराङ्मुखानां—न पराङ्मुखाः तेषाम् अपृष्ठदर्शिनां योधपुरुषाणां—युध्यन्ते इति योधाः ते च ते पुरुषाः तेषां = प्रतिभटानां प्राप्तकालस्य—प्राप्तः कालः यस्य तस्य = लब्धावसरस्य मम = कर्णस्य अक्षयः = कल्याणम् अस्तु भूयात् ।

इदानीं चिकीर्षितं निर्दिशति कर्णः—समरमुखमिति । पाण्डवानां—पाण्डोर्भवाः जाताः तेषां = पाण्डुपुत्राणां युधिष्ठिरादीनामित्यर्थः । असह्यम् = सोढुमशक्यम् समरमुख—समरस्य मुख रणस्थलं (अस्त्रियां समरानीकरणाः कलहविग्रहावित्यमरः) प्रविश्य = प्रवेशं विधाय तत्र गत्वेत्यर्थः । प्रथितगुणगणाढ्य—प्रथितेन = प्रसिद्धेन गुणगणेन = गुणसंहत्या (गणः स्त्रियां तु संहतिर्वृन्दमित्यमरः ।) आढ्यः = युक्तः तम् धर्मराजं—धर्माणां राजा तम् = धर्मपुत्रं युधिष्ठिरं बद्ध्वा = पाशैः संयोज्य किं च मम = कर्णस्य शरवरवेगैः = शरेषु वराः बाणश्रेष्ठाः तेषां वेगाः प्रवाहास्तैः (वेगः प्रवाहजवयोरपि—अमरः) अर्जुनम् एतन्नामानं पाण्डवं पातयित्वा = विनाश्य हतसिंहं हतः सिंहः यस्मिन् यत् (हिंसार्थकस्य हन् धातोः निष्ठाप्रत्यये नकारस्य अनुदात्तोपदेशवनतीत्यादिना लोपे हत इति) = विनष्टमृगपतिं वनमिव = अरण्यमिव

दिखाने वाले वीर योद्धाओं का कल्याण हो ! मुझ, सुअवसर प्राप्त किये हुये का भी कल्याण हो । अब मैं प्रसन्न हूँ ।

कठिन पाण्डवों की रण की सीमा में प्रवेश करके अत्यन्त प्रसिद्ध गुणों वाले धर्मराज (युधिष्ठिर) को बांध कर अपने तीव्र एवं प्रखर बाणों से अर्जुन को गिराकर (मारकर) [उस दुर्गम पाण्डवों की सेना को] भयानक सिंह के मर जाने पर सुगम (निरापद) जङ्गल की भांति बना दूंगा ॥ १४ ॥

शल्यराज ! यावद्रथमारोहावः ।

शल्यः—बाढम् ।

(उभौ रथरोहणं नाटयतः ।)

कर्णः—शल्यराज ! यत्रासावर्जुनस्तत्रैव चोद्यतां मम रथः ।

(नेपथ्ये)

भो कण्ण ! महत्तरं भिक्खं याचेमि । [भोः कर्ण ! महत्तरां भिक्षां याचे ।]

कर्णः—(आकर्ण्य) अये वीर्यवान् शब्दः ।

श्रीमानेष न केवलं द्विजवरो यस्मात्प्रभावो महा-
नाकर्ण्य स्वरमस्य धीरनिनदं चित्रार्पिताङ्गा इव ।

(•अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनम्—अमरः) सुप्रवेशं = सुखेन प्रवेशयोग्यं करोमि = विदधामि । वीरान् पातयित्वा सुलभमार्गं करोमीति भावः । मालिनी-वृत्तम्, दृष्टान्तालङ्कारः ॥ १४ ॥

वीर्यवान् = ओजस्वी गम्भीर इति !

भिक्षु-याचितं शब्दं श्रुत्वा सा वाक् ओजस्विनीति कर्णः निरूपयन्नाह—श्रीमा-निति । एषः = याचकः शब्दोच्चारणकर्त्ता केवलम् = एकमात्रं द्विजवरः = ब्राह्मण श्रेष्ठः।न अपितु श्रीमान्—श्रीः अस्ति यस्य = शोभायुक्तः यस्मात् = द्विज-वचनात् महान् = व्यापकः प्रभावः = इदं माहात्म्यम् अस्य = याचकस्य धीरनिनदं—धीरो

शल्यराज ! तो रथ पर हम लोग चढ़ें ।

शल्य—बहुत अच्छा ।

(दोनों रथ पर चढ़ने का नाट्यकरते हैं।)

कर्ण—शल्यराज ! जहां वह अर्जुन है वहीं मेरे रथ को ले चलो ।

(नेपथ्य)

हे कर्ण ! मैं बहुत बड़ी भिक्षा माँगता हूँ ।

कर्ण—(सुनकर) अरे, यह तो बड़ा तेजस्वी शब्द है ।

यह केवल साधारण ब्राह्मण नहीं अपितु कोई ऐश्वर्यवान् व्यक्ति है जिसके गम्भीर घोष को सुनकर उसके प्रभाव से मेरे चलते हुये घोड़े, कान खड़े करके,

उत्कर्णस्तिमिताञ्चिताक्षवलितग्रीवार्पिताग्रानना-
स्तिष्ठन्त्यस्ववशाङ्गयष्टि सहसा यान्तो ममैते हयाः ॥ १५ ॥

आहूयतां स विप्रः। न न। अहमेवाह्वयामि। भगवन्नित इतः।

(ततः प्रविशति ब्राह्मणरूपेण शक्रः)

शक्रः—भो मेघाः, सूर्येणैव निवर्त्य गच्छन्तु भवन्तः। (कर्णमुपगम्य) भो कण्ण! महत्तरं भिक्खं याचेमि। [भोः कर्ण! महत्तरां भिक्षां याचे।]

निनदो यस्मिन् स तं=गम्भीरघोषं स्वरं=वाचम् आकर्ण्य=श्रुत्वा मम=कर्णस्य एते प्रस्थिताः हयाः =तुरगाः उत्कर्णस्तिमिता०—उत्कर्णाः—उद्गताः कर्णाः येषां ते =उत्थितश्रवणाः स्तिमिताञ्चिताक्षाः—स्तिमितानि = निमीलितानि अञ्चितानि शोभनानि च अक्षीणि = नेत्राणि येषां ते, वलितायां=भुग्नायां ग्रीवायां=शिरोधरायाम् अर्पितानि = दत्तानि अग्राननानि = मुखाग्रभागा येषां ते, उत्कर्णाश्च ते स्तिमिताञ्चिताक्षाश्च ते, वलितग्रीवार्पिताननाश्च (अत्र कर्मधारय—बहुव्रीहिसमासद्वयम्) अस्ववशाङ्गयष्टि—स्ववशा न भवति इति अस्ववशा अङ्गयष्टिः यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात् तथा (बहुव्रीहिसमासः) = पराधीनशरीरं सहसा = झटिति यान्तः = गच्छन्तः चित्रार्पिताङ्गा इव—चित्रे = चित्रफलके अर्पितानि=दत्तानि अङ्गानि = शरीराणि येषां ते=चित्रलिखिता इव तिष्ठन्ति = गमनप्रतिनिवृत्ताः सन्ति। आगन्तुकस्यास्य याचकस्य वाचः प्रभावादेव इमे मे तुरगाः चित्रे निवेशिता इव जाता इति भावः। शार्दूलविक्रीडितम् वृत्तम्। अत्युक्तिगर्भितोपमालङ्कारः ॥ १५ ॥

भगवन् = भग ऐश्वर्यमस्ति अस्य तत्संबुद्धौ। अङ्ग ऐश्वर्यवन्!

निर्निमेष दृष्टि से गर्दन टेढी करके उसी ओर देखते हुए यकायक रुक गये जैसे चित्र लिखित हों और उनका अपने शरीर पर कुछ वश ही नहीं रह गया हो ॥१५

इस ब्राह्मण को बुलाओ। नहीं नहीं। मैं ही बुलाता हूँ। श्रीमान्! इधर आइये इधर।

[तब ब्राह्मणवेषधारी इन्द्र आते हैं।]

शक्र—हे मेघ! सूय के साथ तुम सब चले जाओ। (कर्ण के समीप जाकर) हे कर्ण! बहुत बड़ी भिक्षा माँग रहा हूँ।

कर्णः—दृढं प्रीतोऽस्मि भगवन् !

याताः कृतार्थगणनामहमद्य लोके
राजेन्द्रमौलिमणिरञ्जितपादपद्मः ।
विप्रेन्द्रपादरजसा तु पवित्रमौलिः
कर्णो भवन्तमहमेष नमस्करोमि ॥१६॥

शक्रः—(आत्मगतम्) किं नु खलु मया वक्तव्यं, यदि दीर्घायुर्भवेति वक्ष्ये दीर्घायुर्भविष्यति । यदि न वक्ष्ये मूढ इति मां परिभवति । तस्मादुभयं परिहृत्य किं नु खलु वक्ष्यामि । भवतु दृष्टम् । (प्रकाशम्) भो कण्ण ! सुय्ये विअ, चन्दे विअ, हिमवन्ते विअ, सागले विअ,

---

इदानीं विप्रदर्शनेन तस्य आशीर्वादलाभेन च आत्मानं कृतकृत्यं मन्यते, कर्णः । कथयति च—या इति ।

अद्य = इदानीं लोके = भुवने (लोकस्तु भुवने जने इत्यमरः ।) राजेन्द्रमौलिमणिरञ्जितपादपद्मः—राजेन्द्राणां = भूपतानां मौलौ = शिरसि ये मणयः = रत्नानि तैः रञ्जितं = सुशोभितं पादपद्मं = चरणाब्जं यस्य स एवम्भूतः कृतार्थगणनां—कृतः अर्थः यैस्तै तेषां कृतकृत्यार्थानां जनानां गणना संख्यानम् अहं = कर्णः यातः = प्राप्तः । तु किन्तु (इदानीं) विप्रेन्द्रपादरजसा विप्रेषु इन्द्राः तेषां पादाः तेषां रजः तेन = भूसुरचरणरेणुना पवित्रमौलिः—पवित्रो मौलिः यस्य सः = पूतमस्तकः एषः = तव पुरतः स्थितः कर्णः = राधेयः भवन्तं = विप्रं याचकम् अहं नमस्करोमि = प्रणमामि । वसन्तलिका वृत्तम् । छेकानुप्रासश्च ॥१६

कर्ण—हे ऐश्वर्यवन् ! मैं बहुत प्रसन्न हूँ ।

अनेक प्रतापी महाराजाओं के मणिमय मुकुट से जिसका चरण कमल शोभित होता है (अर्थात् अनेक राजे-महाराजे जिसके चरणों पर झुकते हैं) वह कर्ण आज ब्राह्मणश्रेष्ठ के चरणों की धूलि से पवित्र मस्तकवाला संसार में कृतार्थ होकर आपको नमस्कार करता है ॥ १६ ॥

शक्र–(अपने मन में) अब मुझ क्या कहना चाहिए, यदि दीर्घायु हो ऐसा कहते हैं तो चिरंजीवी होगा, यदि नहीं कहते हैं तो मुझे मूर्ख समझेगा । तो

चिट्ठदु दे जसो। [भो कर्ण ! सूर्य इव, चन्द्र इव, हिमवान् इव, सागर इव तिष्ठतु ते यशः।]

कर्णः—भगवन् ! किं न वक्तव्यं दीर्घायुर्भवेति। अथवा एतदेव शोभनम्। कुतः—

धर्मो हि यत्नैः पुरुषेण साध्यो भुजङ्गजिह्वाचपला नृपश्रियः।
तस्मात्प्रजापालनमात्रबुद्ध्या हतेषु देहेषु गुणा धरन्ते ॥ १७॥

भगवन्, किमिच्छसि। किमहं ददामि।

शक्रः—महत्तरं भिक्खं याचेमि। [महत्तरां भिक्षां याचे।]

कर्णः—महत्तरां भिक्षां भवते प्रदास्ये। श्रूयन्तां मद्विभवाः।

यद् ब्राह्मणेन आशीर्वचननं दत्तं मह्यं तदेव शोभनमिति स्पष्टयति—धर्मो हीति।

हि = यतः पुरुषेण = मानवेन धर्मः = शास्त्रोक्तं कर्तव्यं यत्नैः = स्वोद्योगैः साध्यः = कर्तव्यः नृपश्रियः—नृपाणां श्रियः = राजलक्ष्म्यः भुजङ्गजिह्वाचपलाः—भुजङ्गानां जिह्वा इव चपलाः = फणिनां रसना इव चञ्चलाः तस्मात् = तस्मात् कारणात् हतेषु = नष्टेषु देहेषु = विग्रहेषु प्रजापालनमात्रबुद्ध्या–प्रजायाः पालनं तन्मात्रा बुद्धिः तया = जनरक्षणमात्रमत्या गुणाः = दयादाक्षिण्यादयः धरन्ते (धृ + लट् + झोऽन्तादेशः) = तिष्ठन्ति। उपजातिवृत्तम् ॥ १७ ॥

दोनों को छोड़कर मैं क्या कहूँ। अच्छा देखा। (प्रकाश में) हे कर्ण ! सूर्यकी भाँति, चन्द्र, हिमवान् एवं सागर की भाँति, तुम्हारा यश हो।

कर्ण—भगवन्। 'दीर्घायु हो' ऐसा क्यों नहीं कहा। अथवा यही अति सुन्दर है। क्योंकि,

केवल धर्म ही मनुष्य के द्वारा यत्नपूर्वक साध्य है। राजलक्ष्मी तो सर्प की जिह्वा की भाँति चञ्चल है इसलिए प्रजा का पालन करने वाला अपने शरीर-पात के बाद केवल यश से ही जीवित रहता है ॥ १७ ॥

भगवन् ! क्या चाहते हैं ? क्या दूँ ?

शक्र—बहुत बड़ी भिक्षा चाहता हूँ।

कर्ण—आपको बहुत बड़ी भिक्षा दी जाएगी। मेरा ऐश्वर्य सुनिए।

गुणवदमृतकल्पक्षीरधाराभिवर्षि
द्विजवर! रुचितं ते तृप्तवत्सानुयात्रम्।
तरुणमधिकमर्थिप्रार्थनीयं पवित्रं
विहितकनकशृङ्गं गोसहस्रं ददामि ॥ १८ ॥

शक्रः—गोसहस्सं त्ति। मुहुत्तअं खिरं पिबामि। णेच्छामि कण्ण! णेच्छामि। [गोसहस्रमिति। मुहूर्तकं क्षीरं पिबामि। नेच्छामि कर्ण! नेच्छामि।]

कर्णः—किं नेच्छति भवान्। इदमपि श्रूयताम्।

रवितुरगसमानं साधनं राजलक्ष्म्याः

विभवाः = ऐश्वर्याणि।

गुणवदिति। हे द्विजवर–द्विजेषु वरः तत् सम्बुद्धौ = ब्राह्मणश्रेष्ठ! अहं = कर्णः गुणवदमृतकल्पक्षीरधाराभिवर्षि—गुणवतां = गुणयुक्तानाम् अमृतकल्पानां = पीयूषतुल्यानां क्षीराणां = दुग्धानां धारा = प्रस्रवणं तामभिवर्षितुं शीलमस्येति गुणवदमृतकल्पक्षीरधाराभिवर्षि तृप्तवत्सानुयात्रं—तृप्तानां वत्सानाम् अनुयात्रा यस्य तत् = दुग्धतृप्तवत्सानुगतं तरुणं = युवानम् अधिकं = विशेषम् अर्थिप्रार्थनीयम्—अर्थिनां = याचकानां प्रार्थनीयं = प्रार्थनायोग्यं = याचकयाचितम् विहितकनकशृङ्गं=विहितानि कनकानां शृङ्गाणि यस्मिन् तत्=कृतसुवर्णशृङ्ग पवित्रं = जरादिदोषरहितं रुचितं = रुचिकरं गोसहस्रं—गवां = धेनूनां सहस्रं = दशशतसंख्याकं ते = तुभ्यं ददामि = समर्पयामि। मालिनी वृत्तम् ॥ १८ ॥

इदानीमन्यद् देयवस्तु प्रतिपादयति कर्णः—रवीति।

रवितुरगसमानं—रवेः तुरगाः तेषां समानं = सूर्याश्वतुल्यं राजलक्ष्म्याः—

ओ ब्राह्मणश्रेष्ठ, यदि तुम्हें पसन्द हो तो, जिनके सींघ का ऊपरी भाग स्वर्ण मण्डित है, जो स्वस्थ सुन्दर और युवती हैं, अमृत के तुल्य मधुर दुग्ध की धारा बहानेवाली, सन्तुष्ट बछड़ों के साथ, पवित्र तथा अन्य धन-धान्य सहित मैं (तुम्हें) हजारों गाएँ दे सकता हूँ ॥ १८ ॥

शक्र—हजार गाएँ! कुछ समय तक दूध पिऊँगा। नहीं चाहता, कर्ण नहीं चाहता।

कर्ण—क्या आप नहीं चाहते। इसे भी सुनिए—

सूर्य के घोड़ों के सदृश, राजश्री के साधनभूत, अनेक राजाओं से प्रशंसित,

सकलनृपतिमान्यं मान्यकाम्बोजजातम् ।
सुगुणमनिलवेगं युद्धदृष्टापदानं
सपदि बहुसहस्रं वाजिनां ते ददामि ॥ १९ ॥

शक्रः–अस्स त्ति । मुहुत्तअं आलुहामि । णेच्छामि कण्ण ! णेच्छामि ।

कर्णः—किं नेच्छति भगवान् । अन्यदपि श्रूयताम् ।

मदसरितकपोलं षट्पदैः सेव्यमानं
गिरिवरनिचयाभं मेघगम्भीरघोषम् ।

राज्ञां लक्ष्मीः तस्याः = नृपश्रियः साधनं = करणम् सकलनृपतिमान्यं—सकलानां = सर्वेषां नृपतीनां = राज्ञां मान्यं = माननीयं मान्यकाम्बोजजातम्—मान्येषु = आदरणीयेषु काम्बोजेषु = कम्बोज (काबुल इति लोके) देशोद्भवेषु जातम् = उत्पन्नं सुगुणं सु शोभनाः गुणाः यस्मिन् तत् = समीचीनगुणयुक्तम् अनिलवेगं—अनिलस्य वेग इव वेगः यस्मिन् तत् = वायुजवम् युद्धदृष्टापदानं—युद्धेषु दृष्टानि अपदानानि यस्मिन् तत् = आहवदृष्टपराक्रमादिकर्मवृत्तम् वाजिनां = तुरगाणां बहुसहस्रम् = अनेकसहस्रसंख्याकं सपदि = सद्यः ते = तुभ्यं (याचकाय) ददामि = दानं करोमि । अत्रापि मालिनीवृत्तम् ॥ १९ ॥

मदेति । मदसरितकपोलं मदेन = दानेन (गण्डः कटो मदो दानम्—अमरः।) सरिताः = दिग्धाः कपोला यस्मिन् तत् = दानसिक्तगण्डस्थलम् अतएव षट्पदैः = भ्रमरैः (द्विरेफपुष्पलिड्भृङ्गषट्पदभ्रमरालयः—अमरः ।) सेव्यमानं = युक्तं गिरिवरनिचयाभं—गिरिवराणां = पर्वतश्रेष्ठानां निचयाः = पुञ्जाः तेषाम् आभा इव आभा यस्मिन् तत्, मेघगम्भीरघोषम्—मेघः = जलदः इव गम्भीरः = ओजस्वी

उत्तम काबुली जाति के, अद्‌भुतगुणों से युक्त अनिल के समान तीव्र वेगवाले, तथा युद्धक्षेत्र में जिनकी वीरता देखी जा चुकी है ऐसे हजारों घोड़े मैं तुरन्त दे दूंगा ॥ १९ ॥

शक्र—घोड़े । थोड़े समय तक चढ़ूंगा । नहीं चाहता कर्ण ! नहीं चाहता ।

कर्ण—क्या नहीं चाहते आप ? अच्छा दूसरा सुनिए ।

मद की नदियां जिनके कपोलों से बह रही हैं और भ्रमर मँडरा रहे हैं । गिरि-समूह के समान जिनकी शोभा है, जो मेघ के समान गम्भीर घोष वाले, श्वेत

सितनखदशनानां वारणानामनेकं
रिपुसमरविमर्दं वृन्दमेतद्ददामि ॥ २० ॥

शक्रः—गअ त्ति । मुहुत्तअं आलुहामि । णेच्छामि कण्ण ! णेच्छामि । [गज इति । मुहूर्तकमारोहामि । नेच्छामि कर्ण ! नेच्छामि ।]

कर्णः—किं नेच्छति भवान् । अन्यदपि श्रूयताम् । अपर्याप्तं कनकं ददामि ।

शक्रः—गह्णिअ गच्छामि । (किंचिद् गत्वा) णेच्छामि कण्ण ! णेच्छामि (गृहीत्वा गच्छामि । नेच्छामि कर्ण ! नेच्छामि ।)

कर्णः—तेन हि जित्वा पृथिवीं ददामि ।

शक्रः—पुहुवीए किं करिस्सम् । [पृथिव्या किं करिष्यामि ।]

कर्णः—तेन ह्यग्निष्टोमफलं ददामि ।

घोषः = स्वरः यस्मिन् तत् सितनखदशनानां—सिताः = शुभ्राः नखा दशनाश्च येषां तेषां = स्वच्छकरजदन्तानां वारणानां = गजानां रिपुसमरविमर्दं—रिपूणां = शत्रूणां समरे = संग्रामे विमर्दं = विमर्दकारक (विमर्दयति विमर्दम् पचाद्यच् ।) एतत् = इदम् अनेकं = बहु वृन्दं = समूहं ददामि = दानं करोमि । मालिनी वृत्तम् ॥ २० ॥

अग्निष्टोमफलं = वैतानिकेऽग्नौ साध्यः स्वर्गफलकः मर्त्यलोकोत्पन्नवेदविद्भिः अवश्यमाचरणीयो वेदोक्तः अग्निष्टोमनामको यज्ञः स्वकर्तृकः तस्य फलं ददामि = दातुमिच्छामि ।

नख और दाँत से युक्त तथा युद्धभूमि में अनेक शत्रुओं को विनष्ट करने वाले अनेक हाथियों का समूह (तुम्हें) दूँगा ॥२०॥

शक्र—गज ! थोड़े समय तक चढ़ूँगा । नहीं चाहता कर्ण ! नहीं चाहता ।

कर्ण—क्या आप इसे भी नहीं चाहते । और भी सुनो । अतुल स्वर्ण दूँगा ।

शक्र—लेकर चला जाउँगा । (कुछ दूर जाकर) नहीं चाहता कर्ण ! नहीं चाहता ।

कर्ण—तो भूमि को जीतकर दूँगा ।

शक्र—पृथ्वी लेकर क्या करूँगा ?

कर्ण—तो अग्निष्टोम (यज्ञ) का फल दूँगा ।

शक्रः—अग्गिट्ठोमफलेण किं कय्यं। [अग्निष्टोमफलेन किं कार्यम्।।]

कर्णः—तेण हि मच्छिरो ददामि। [तेन हि मच्छिरो ददामि।]

शक्रः—अविहा अविहा। [अविहा अविहा !]

कर्णः—न भेतव्यं न भेतव्यम्। प्रसीदतु भवान्। अन्यदपि श्रूयताम्।

अङ्गैः सहैव जनितं मम देहरक्षा
देवासुरैरपि न भेद्यमिदं सहस्रैः।
देयं तथापि कवचं सह कुण्डलाभ्यां
प्रीत्या मया भगवते रुचितं यदि स्यात्॥२१॥

कर्णः विप्राय भिक्षवे अभिलषिते कवचकुण्डले दातुं प्रतिश्रृणोति—अङ्गैः सहेति। (यद्यपि) अङ्गैः = गात्रैः सहैव = सार्धमेव जनितम् = प्रादुर्भूतम् (अनेन) मम = कर्णस्य देहरक्षा—देहस्य रक्षा (षष्ठी समासः) = शरीरसंरक्षणं (भवति) इदं = कवचं सहास्त्रैः—अस्त्रैः सार्धम् = आयुधयुक्तैः देवासुरैरपि—देवाश्च असुराश्च तैः (द्वन्द्वसमासः) = अमरदानवैरपि न भेद्यम् न भेत्तुं योग्यं = नहि खण्डनीयमित्यर्थः। तथापि कुण्डलाभ्यां सह = कर्णाभरणाभ्यां साकं कवचं = वर्म (तनुत्रं वर्म दशनम्। उरच्छदः कङ्कटकोऽजगरः कवचोऽस्त्रियाम्—अमरः।) यदि = चेत् भगवते = ब्राह्मणाय रुचितम् = अभिलषितं स्यात् = भवतु (तर्हि) मया = कर्णेन प्रीत्या = प्रसन्नतया देयं = दातुं योग्यम्। यद्यप्यनेन कवचेन ममाङ्ग-रक्षा भवति तथापि तवाभीष्टं चेत् तर्हि ददामीति भावः। अत्र वसन्ततिलका वृत्तम्॥ २१॥

शक्र—अग्निष्टोम का फल लेकर क्या होगा ?

कर्ण—तो अपना शिर दूँगा।

शक्र—ईश्वर रक्षा करे, रक्षा करे।

कर्ण—न डरिए, न डरिए। आप प्रसन्न हों। और भी सुनिए।

अंगों के साथ ही मेरे शरीर रक्षा के लिए हजारों अस्त्रों से देवता और दानवों से भी अभेद्य यह (कवच) है। यदि आपको ईप्सित हो तो मैं प्रसन्नतापूर्वक अपने कवच के साथ कुण्डल को भी आपको दे दूँ॥ २१॥

शक्रः—(सहर्षम् ।) देदु, देदु । [ददातु, ददातु ।]

कर्णः—(आत्मगतम्) एष एवास्य कामः ।' किं नु खल्वनेककपटबुद्धेः कृष्णस्योपायः । सोऽपि भवतु । धिगयुक्तमनुशोचितम् । नास्ति संशयः । (प्रकाशम्) गृह्यताम् ।

शल्यः—अङ्गराज ! न दातव्यं न दातव्यम् ।

कर्णः—शल्यराज ! अलमलं वारयितुम् । पश्य

शिक्षा क्षयं गच्छति कालपर्ययात्
सुबद्धमूला निपतन्ति पादपाः ।
जलं जलस्थानगतं च शुष्यति
हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति ॥ २२ ॥

शल्यराजेन वारितोऽपि दानस्यैव माहात्म्यं प्रतिपादयति कर्णः—शिक्षेति । कालपर्ययात्—कालस्य पर्ययः तस्मात् = समयपरिवर्तनात् शिक्षा = विद्यार्जनं क्षयं = नाशं गच्छति = याति प्राप्नोतीति भावः । सुबद्धमूलाः = शोभनं बद्धं मूलं येषां ते सुदृढवुध्नाः (मूलं बुध्नोऽङ्घ्रिनामकः—अमरः ।) निपतन्ति (नि + पत् + लट् प्रथमपुरुषबहुवचने) = विशीर्णाः भवन्ति । जलस्थानगतं—जलस्य स्थानं तस्मिन् गतं = जलाशयस्थं जलं = नीरं च शुष्यति = शुष्कतां याति । किन्तु यत् हुतम् = अग्नौ प्रक्षिप्तं यच्च दत्तं = सत्पात्रे प्रतिपादितं तत् तथैव = अविकृतमेव तिष्ठति अत इदं दानमेव प्रशस्तमिति भावः । वंशस्थवृत्तम् ॥२२॥

शक्र—(प्रसन्नतापूर्वक) दीजिए, दीजिए ।

कर्ण—(मन में) यही इसका मतलब था । अवश्य ही यह अनेक कपट-व्यवहार में रत बुद्धि वाले कृष्ण का ही उपाय है । वह भी हो । धिक्कार है, यह मैंने अनुचित विचार किया । कोई संशय नही । (प्रकाश में) लीजिए ।

शल्यराज—अङ्गराज ! न दीजिए, न दीजिए ।

कर्ण—शल्यराज ! बस, अब मत रोको । देखो,

समय बीतने पर उपार्जित विद्या भी नष्ट हो जाती है और मजबूत जड़वाले वृक्ष भी गिर पड़ते हैं, जल भी सरोवर में जाकर (गर्मी आने पर) सूख जाता है किन्तु जो हवनादि किया हुआ पदार्थ या दान में दिया हुआ है वह ज्यों का त्यों बना रहता है, अर्थात् पुण्य का नाश नहीं होता ॥ २२ ॥

तस्मात् गृह्यताम् (निकृत्य ददाति ।)

शक्रः—(गृहीत्वा, आत्मगतम् ।) हन्त गृहीते एते । पूर्वमेवा-(हम् ?) र्जुनविजयार्थं सर्वदेवैर्यत् समर्थितं तदिदानीं मयानुष्ठितम् । तस्माद-हमप्यैरावतमारुह्यार्जुनकर्णयोर्द्वन्द्वयुद्धं पश्यामि । (निष्क्रान्तः ।)

शल्यः—भो अङ्गराज ! वञ्चितः खलु भवान् ।

कर्णः—केन ?

शल्यः—शक्रेण ।

कर्णः—न खलु । शक्रः खलु मया वञ्चितः । कुतः,

अनेकयज्ञाहुततर्पितो द्विजैः
किरीटवान् दानवसङ्घमर्दनः ।
सुरद्विपास्फालनकर्कशाङ्गुलि-
मया कृतार्थः खलु पाकशासनः ॥ २३ ॥

अनेकेति । द्विजैः = ब्राह्मणक्षत्रियविड्भिः अनेकयज्ञाहुतितर्पितः—अनेके च ते यज्ञाः तेषु या आहुतयः ताभिः तर्पितः = असंख्यमखाहुत्याप्यायितः किरीटवान्—किरीटम् अस्ति अस्य = किरीटवान् = मुकुटवान् दानवसङ्घमर्दनः—दानवानां सङ्घास्तान् मर्दयतीति = दैत्यनिकरनाशकः सुरद्विपास्फालनकर्कशाङ्गुलिः—द्वाभ्यां मुखशुण्डाभ्यां पिबतीति द्विपः सुरस्य द्विपः ऐरावतस्तस्य आस्फालनानि संचालनानि

इसलिए लीजिये । (निकाल कर देता है ।)

शक्र—(लेकर अपने मन में) ओह ! यह ले लिया गया । पहले ही मैंने अर्जुन की विजय के लिए जो सब देवताओं से प्रतिज्ञा की थी वह आज मैंने कर लिया । अतएव अब मैं ऐरावत पर चढ़ कर कर्ण और अर्जुन के युद्ध को देखूंगा ।

(चला जाता है ।)

शल्य—हे अङ्गराज ! आप ठग लिए गए ।

कर्ण—किसके द्वारा ?

शल्य—इन्द्र से ।

कर्ण—नहीं, इन्द्र ही मुझसे ठगा गया क्योंकि—

ब्राह्मणों के अनेक यज्ञों के फल से तृप्त हुआ, दानवों के समूह का विनाशक, मुकुट को धारण करने वाला और ऐरावत को थपथपाने से कठोर अङ्गुलियों वाला इन्द्र (आज) अवश्य ही मेरे द्वारा उपकृत हुआ ॥ २३ ॥

(प्रविश्य ब्राह्मणरूपेण)

देवदूतः—भोः कर्ण ! कवचकुण्डलग्रहणाज्जनितपश्चात्तापेन पुरन्दरेणानुगृहीतोऽसि । पाण्डवेष्वेकपुरुषवधार्थममोघमस्त्रं विमला नाम शक्तिरियं प्रतिगृह्यताम् ।

कर्णः—धिग्, दत्तस्य न प्रतिगृह्णामि ।

देवदूतः—ननु ब्राह्मणवचनाद् गृह्यताम् ।

कर्णः—ब्राह्मणवचनमिति । न मयातिक्रान्तपूर्वम् । कदा लभेय ।

देवदूतः—यदा स्मरसि तदा लभस्व ।

कर्णः—बाढम् । अनुगृहीतोऽस्मि । प्रतिनिवर्ततां भवान् ।

देवदूतः—बाढम् । (निष्क्रान्तः)

कर्णः—शल्यराज ! यावद्रथमारोहावः ।

तैः = कर्कशा अङ्गुलयो यस्य = ऐरावतचालनकठिनकरशाखः (अङ्गुल्यः करशाखाः स्युः—अमरः ।) पाकशासनः—पाकनामानं दैत्यं शासयति = इन्द्रः (इन्द्रो मरुत्वान् मघवा विडौजाः पाकशासनः—अमरः ।) मया = कर्णेन कृतार्थः—कृतः अर्थः यस्य सः = कृतकृत्यः खलु । वंशस्थवृत्तम् ॥ २३ ॥

(ब्राह्मण रूप से प्रवेश करके)

देवदूत—हे कर्ण ! कवच और कुण्डल ले लेने के पश्चात्ताप से युक्त इन्द्र के द्वारा तुम उपकृत किए गए हो । पाण्डवों में से एक पुरुष के वध करने का यह अचूक अस्त्र विमला नामक शक्ति ग्रहण करो ।

कर्ण—धिक्कार है । दान का बदला नहीं लेता ।

देवदूत—अवश्य ही ब्राह्मण वचन से ले लो ।

कर्ण—ब्राह्मण का वचन । मैंने पहले कभी नहीं टाला । कब प्राप्त करूँगा (शक्ति) ।

देवदूत—जब स्मरण करोगे तभी प्राप्त होगी ।

कर्ण—अच्छा उपकृत हुआ । आप लौट जाँय ।

देवदूत—बहुत अच्छा । (चला गया)

कर्ण—शल्यराज ! तब (तक) रथ पर चढ़ा जाय ।

शल्यः—बाढम् । (रथारोहणं नाटयतः ।)

कर्णः—अये शब्द इव श्रूयते । किं नु खल्विदम् ।

शङ्खध्वनिः प्रलयसागरघोषतुल्यः
कृष्णस्य वा न तु भवेत्स तु फाल्गुनस्य ।
नूनं युधिष्ठिरपराजयकोपितात्मा
पार्थः करिष्यति यथाबलमद्य युद्धम् ॥२४॥

शल्यराज ! यत्रासावर्जुनस्तत्रैव चोद्यतां मम रथः ।

शल्यः—बाढम् !

आहवे शंखध्वनिं श्रुत्वा स कृष्णस्य फाल्गुनस्य वा शब्द इति निर्णीयते—शङ्खध्वनिरिति ।

प्रलयसागरघोषतुल्यः—प्रलयसागरः = प्रलयकालीनसमुद्रः तस्य घोषः = शब्दः तेन तुल्यः = सदृशः शङ्खध्वनिः–शङ्खस्य ध्वनिः = कम्बुरवः (शङ्खः स्यात् कम्बुरस्त्रियौ—अमरः ।) कृष्णस्य = यादवेन्द्रस्य वा = एव (व वा यथा तथैवैवम्—अमरः) न तु भवेत् = न स्यात् स तु = ध्वनिस्तु फाल्गुनस्य = अर्जुनस्यैव भवितुमर्हति । यतः युधिष्ठिरपराजयकोपितात्मा—युधिष्ठिरस्य पराजयः तेन कोपितः आत्मा यस्य सः धर्मराजपराजयक्रुद्धमानसः पार्थः = पृथायाः पुत्रः = अर्जुनः अद्य = वर्तमाने संग्रामे यथाबलं = बलमनतिक्रम्य (अव्ययीभावसमासः) यावच्छक्ति इति युद्धम् = आयोधनं करिष्यति = विधास्यति । उपमालंकारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २४ ॥

शल्य—बहुत अच्छा। (रथ पर चढ़ने का नाट्य करते हैं ।)

कर्ण—अरे शब्द सा सुनाई पड़ता है। यह क्या है ?

यह प्रलयकालीन समुद्र के समान अत्यन्त गम्भीर ध्वनि करने वाला कृष्ण का शंख है अथवा अर्जुन का । युधिष्ठिर के पराजय से कुपित मन होकर अर्जुन आज मुझसे अवश्य ही यथाशक्ति युद्ध करेगा ॥ २४ ॥

शल्यराज ! वहीं मेरे रथ को प्रेरित करो जहाँ वह अर्जुन हो ।

शल्य—अच्छा ।

(भरतवाक्यम्)

सर्वत्र सम्पदः सन्तु नश्यन्तु विपदः सदा ।
राजा राजगुणोपेतो भूमिमेकः प्रशास्तु नः ॥ २५ ॥

(निष्क्रान्तौ)

कर्णभारमवसितम् ।
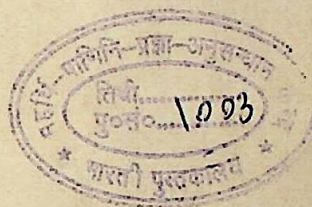
इदं नाटकावसानसमये भरतवाक्यं—सर्वत्रेति ।

सर्वत्र = सर्वस्मिन् जगति सम्पदः—सम्पत्तयः सन्तु = भवन्तु सदा = सर्वदा विपदः = विपत्तयः नश्यन्तु = विनाशभावं प्राप्नुवन्तु । राजगुणोपेतः—राज्ञां गुणाः तैः उपेतः = नृपगुणयुक्तः एकः = केवलः राजा = भूपः राजसिंहः नः = अस्माकं भूमिं = वसुन्धराम् प्रशास्तु (प्र + शास् + लोट् प्रथमपुरुषैकवचने) = शासनं करोतु । अत्रानुष्टुब् वृत्तम् ॥ २५ ॥

--S:o:❋:o:S--

(भरत वाक्य)

सब संसार भर में संपत्तियां हों, विपत्तियों का सर्वथा नाश हो और हम लोगों की पृथ्वी पर कोई योग्य राजा, राजाओं के गुणों से युक्त हो शासन करे ॥२५॥

(चले जाते हैं ।)

कर्णभार सम्पूर्ण

—::❋:❋::—